स्व–निर्देशित अध्ययन सामग्री

Self -Instructional Learning Material

मुख्यमंत्री सामुदायिक नेतृत्व क्षमता विकास कार्यक्रम

मॉड्यूल-20

विकास में पर्यावरण
(Environment in Development)

समाजकार्य स्नातक पाठ्यक्रम (सामुदायिक नेतृत्व)
Bachelor of Social Work (Community Leadership)

महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट

जिला-सतना (मध्यप्रदेश) - 485334

मॉड्यूल–20 : विकास में पर्यावरण (Environment in Development)

अवधारणा एवं रूपरेखा : **संस्करण 2017**

बी.आर. नायडू , आई.ए.एस. प्रमुख सचिव

जे.एन. कंसोटिया, आई.ए.एस. प्रमुख सचिव

अशोक शाह, आई.ए.एस. प्रमुख सचिव

प्रेरणा एवं मार्गदर्शन:

प्रो. नरेश चन्द्र गौतम, कुलपति, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट

परामर्श:

डॉ. टी. करुणाकरन, पूर्व कुलपति

जयश्री कियावत, आई.ए.एस., आयुक्त, महिला सशक्तिकरण

उमेश शर्मा, कार्यपालन निदेशक, मध्यप्रदेश जन–अभियान परिषद

लेखक मण्डल:

डॉ. घनश्याम गुप्ता

प्रो. लोकेन्द्र ठक्कर

संपादक मण्डल :

डॉ अमरजीत सिंह

डॉ. वीरेन्द्र कुमार व्यास

मुद्रक एवं प्रकाशक :

ग्रामोदय प्रकाशन के लिए कुलसचिव

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट

जिला–सतना (मध्यप्रदेश) – 485334, दूरभाष– 07670–265411

सम्पर्क :

डॉ. अमरजीत सिंह, निदेशक एवं लिंक अधिकारी

महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (मध्यप्रदेश)

ई–मेल– cmcldpcourse@gmail.com, मोबाइल– 9424356841

श्री आर. के. मिश्रा, राज्य सलाहकार (यूनिसेफ) सी.एम.सी.एल.डी.पी.

ई–मेल– rkmishraguna@gmail.com, मोबाइल– 9425171972

कॉपीराइट: © – महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट (मध्यप्रदेश)

आभार:– इस पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री अनेक स्रोतों, व्यक्तियों के अनुभव और संस्थाओं के प्रकाशनों एवं वेब साइट्स पर उपलब्ध सामग्री के सहयोग से तैयार की गई है। पाठ्यक्रम के परामर्शदाताओं का अनुभव और सुझाव भी इसमें शामिल है। सभी के प्रति आभार।

मॉड्यूल–20 : विकास में पर्यावरण (Environment in Development)

इकाई–1: पर्यावरण और पारिस्थितिक तंत्र का परिचय 5–34

1.1 भारतीय परंपरा और देशज ज्ञान में पर्यावरण – अर्थ, महत्व एवं प्रासंगिकता

1.2 पारिस्थितिक तन्त्र - परिभाषा, संरचना, कार्यप्रणालियां एवं संरक्षण

1.3 प्राकृतिक संसाधन– परिभाषा, अर्थ, वर्गीकरण एवं मानवीय संबंध

1.4 परिस्थितिक तंत्र और पर्यावरण

1.5 प्रकृति में उत्पादन, क्षरण एवं पारिस्थितिकी पर प्रभाव

1.6 पर्यावरण का अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय व प्रदेशिक स्तर पर चिंतन

1.7 सतत् विकास के लक्ष्य

इकाई–2: पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण 35–60

2.1 र्यावरण प्रदूषण के घटक – कारण एवं निवारण

2.2 पर्यावरण प्रदूषण की उभरती चुनौतियॉ

2.2.1 (i) जैव अपघटनीय कचरा (ii) जैव अनपघटनीय कचरा

2.2.2 आधुनिक कृषि पद्धति

2.2.3 उद्योग तथा वाहन

2.2.4 पारम्परिक उर्जा स्रोत

2.2.5 आधुनिक जीवन पद्धति एवं पर्यावरण क्षरण

2.3 प्रदूषण एवं पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित अधिनियम

2.4 पर्यावरण संरक्षण में स्वयं सेवी संस्थाओ व स्थानीय निकायों की भूमिका

इकाई–3: गंभीर वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियाँ एवं समाधान 61–82

3.1 जैव विविधता संरक्षण–अर्थ एवं प्रकार

3.2: देश एवं प्रदेश में जैव विविधता – चुनौतियां

3.3: जैव विविधता संरक्षण अधिनियम, 2002 व जैव विविधता नियम

3.4 जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक उष्णता – अर्थ एवं अवधारणा

3.5 जलवायु परिवर्तन का वैज्ञानिक, तकनीकी, समाजिक एवं आर्थिक पक्ष

3.6 जलवायु परिवर्तन एवं गरीबी उन्मूलन अन्तर्सम्बन्ध

3.6.1 जलवायु परिवर्तन एवं गरीबी उन्मूलन, आजीविका, खाद्य सुरक्षा, वन एवं जैव विविधता

3.6.2 ऊर्जा के गैर पारम्परिक स्रोत

3.6.3 पशु एवं मानव स्वास्थ्य में अन्तर्सम्बन्ध

3.7 जलवायु परिवर्तन एवं प्राकृतिक आपदा का अन्तर्सम्बन्ध

3.8 जलवायु परिवर्तन की दिशा,राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक प्रयास

इकाई–4: आपदा प्रबंधन 83–98

4.1 परिभाषा एवं अवधारणा

4.2 आपदाओ के प्रकार एवं कारण

4.3 आपदा प्रबन्धन अधिनियम,2005

4.4 मानव जनित आपदाएँ

4.5 आपदा प्रबंधन में शासकीय एवं अशासकीय संस्थाओं की भूमिका

इकाई–5: पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी : मध्य प्रदेश के सम्बन्ध में 99–112

5.1 प्रदेश के प्राकृतिक संसाधन कृषि जलवायु क्षेत्र

5.2 मध्य प्रदेश की जैवविविधता

5.3 पर्यावरणीय खतरे एंव प्राकृतिक आपदाऐं

5.4 मध्यप्रदेश में पर्यावरण अनुकूल विकास की रणनीति

प्रस्तावना

किसी भी ग्राम अथवा नगर के विकास के लिए सबसे बड़ा संसाधन वहाँ के लोग हैं। विकास की समस्याओं का हल समाज द्वारा ही संभव हैं। ग्राम अथवा नगर का विकास तब तक संभव नही हो पायेगा जब तक कि उसमें स्थानीय जन भागीदारी सुनिश्चित न हो। स्थानीय स्तर की समस्याओं व उनके समाधान की बेहतर जानकारी उन्हीं के पास है। स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सीमित संसाधनों से किस प्रकार अधिकतम लाभ प्राप्त किया जा सकता है, इसका भी आंकलन वहाँ के लोग ही कर सकते हैं।

प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो स्वैच्छिकता के भाव से समाज के विकास एवं उत्थान के लिये कार्यरत होते हैं। यदि ऐसे लोगों को जागरूक, क्षमता सम्पन्न एवं सशक्त कर दिया जाए तो वे अधिक प्रभावी एवं व्यवस्थित तरीके से समाज की सहभागिता से समाज के विकास के लिये कार्य कर सकेंगे। ऐसे ही स्वप्रेरणा से प्रयासरत लोगों को शिक्षित कर सशक्त सामाजिक नेतृत्वकर्ता के रूप में विकसित करने हेतु शासन द्वारा मुख्यमंत्री सामुदायिक नेतृत्व क्षमता विकास कार्यक्रम का संचालन किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय द्वारा प्रदेश शासन के सहयोग से समाजकार्य स्नातक पाठ्यक्रम संचालित किया जा रहा है। पाठ्यक्रम का एक वर्ष सफलतापूर्वक पूर्ण करने पर समाज कार्य (सामुदायिक नेतृत्व में विशेषज्ञता) में सर्टिफिकेट, दो वर्ष सफलतापूर्वक पूर्ण करने पर समाज कार्य (सामुदायिक नेतृत्व में विशेषज्ञता) में डिप्लोमा तथा तीन साल सफलतापूर्वक पूर्ण करने पर समाज कार्य (सामुदायिक नेतृत्व में विशेषज्ञता) में डिग्री दी जायेगी। इस पाठ्यक्रम का उद्देश्य प्रदेश के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में ऐसे क्षमतावान युवक एवं युवतियों को तैयार करना है, जिन्हें क्षेत्र के विकास की अच्छी समझ हो और जो क्षेत्र की समस्याओं की पहचान भी कर सकें। समस्याओं के निदान के लिए निर्णायक पहल कर सकें। आत्मविश्वास और ऊर्जा से ओत–प्रोत नौजवानों की ऐसी पीढ़ी तैयार हो जो समाज की समस्याओं के समाधान के लिए केवल सरकारी प्रयासों पर निर्भर न हों, बल्कि समुदाय के परिश्रम और पुरुषार्थ से ग्राम की या अपने आस–पास की परिस्थितियों को बदलने के लिए सकारात्मक पहल कर सकें।

यथार्थ में अपने क्षेत्र के विकास में आपके योगदान से ही स्वर्णिम मध्यप्रदेश का स्वप्न साकार हो सकेगा। इसी की पहली कड़ी के रूप में यह पाठ्यक्रम आपके सम्मुख प्रस्तुत है, जिसमें परिवर्तन और विकास के दूत बनाने के लिए आपको सैद्धान्तिक और व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान किया जा रहा है। इस पाठ्यक्रम के माध्यम से प्रयास किया गया है कि आप ग्राम के विकास के प्रयासों को वैज्ञानिक स्वरूप दे सकें। आप जो भी सामुदायिक कार्य करें वह स्थायी हो, सबके सहयोग से हो और सबके विकास में सहयोगी हो।

वर्तमान में विकास की अवधारणा इस बात को रेखांकित करती है कि विकास के लिए जिन साधनों का उपयोग हो रहा है वह इस प्रकार हो कि भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को प्रभावित न करे। दूसरे शब्दों में विकास के परिणामस्वरूप जो प्राकृतिक संसाधन उपयोग में लाये जा रहे हैं उसी मात्रा में उनके पुनर्सृजन की प्रक्रिया भी चले। जलवायु परिवर्तन के दुष्परिणामों से विश्व दो–चार हो रहा है। प्राकृतिक प्रकोप निरन्तर बढ़ रहे हैं। ऐसी दशा में पर्यावरण संतुलन और पर्यावरण संरक्षण विकास की मूलभूत शर्त है। इस मॉड्यूल में हमने विकास के दृष्टिकोण से पर्यावरण की आवश्यकता और महत्व को रेखांकित किया है। प्राकृतिक आपदाओं को काबू में करने के लिए, हमारी वसुन्धरा की जैव विविधता के संरक्षण के लिए और सम्पूर्ण मानव और पर्यावरण के सहअस्तित्व के लिए हमें अपनी निजी दिनचर्या से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय योजनाओं के प्रारूप पर भी पुनर्विचार करने की आवश्यकता महसूस हो रही है। विकास में पर्यावरण का यह मॉड्यूल न केवल प्रकृति और पर्यावरण के प्रति आपके नजरिए को व्यापक और समृद्ध बनायेगा वरन् आने वाले कल के खतरों से आगाह करते हुए इस मार्गदर्शक सिद्धान्त को जीने की प्रेरणा देगा जिसमें कहा गया है कि प्रकृति सभी की आवश्यकताओं को तो पूर्ण कर सकती है किन्तु एक व्यक्ति के लोभ को नहीं।

■■■

20.1 : पर्यावरण और पारिस्थितिक तंत्र का परिचय (Introduction of Environment and Ecosystem)

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि–

भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में पर्यावरण और प्रकृति को किस प्रकार महत्व दिया गया है।

पारिस्थितिक तंत्र क्या होता है? इसकी संरचना और कार्य–प्रणाली क्या होती है?

प्राकृतिक संसाधनों से क्या आशय है?

सतत विकास की दृष्टि से पर्यावरण का महत्व क्या है?

वैश्विक स्तर पर पर्यावरण की संरक्षण हेतु क्या–क्या उपाय किये जा रहे हैं? इनके साथ–साथ राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर पर हमारी नीतियाँ और कार्यक्रम क्या हैं?

20.1.1 भारतीय परम्परा और देशज ज्ञान में पर्यावरण – अर्थ, महत्व एवं प्रासंगिकता (Indian tradition and environment in indigenous knowledge)

हमारी भारतीय परम्परा मे अति प्राचीन काल से ही हमारे पूर्वज पर्यावरण के प्रति सचेत व जागरूक रहे हैं। उनको पर्यावरण के सभी पहलुओं जैसे जैविक व अजैविक घटको, जैव विविधता, प्रदूषण, जन जागरूकता इत्यादि के बारे मे भरपूर ज्ञान था। उनको इस बात का सघन ज्ञान था कि अपने पर्यावरण को अच्छारखने पर उनका अस्तित्व व विकास स्वमेव वृद्धि को प्राप्त होगा। रामचरितमानस में आया है कि माँ पार्वती, भगवान राम, महर्षि बाल्मीकि, सबरी, मुनियो, जनक, कागभुशुंड इत्यादि के रहने से उधर के पर्यावरण का अधिकाधिक विकास हुआ क्योकि वे **पर्यावरण के प्रति अति जागरूक** थे।

20.1.2 पारिस्थितिक तन्त्र-परिभाषा, संरचना, कार्यप्रणालियां एवं संरक्षण (Ecosystem-definition, structure, functioning and conservation)

पर्यावरण में पाए जाने वाले समस्त जीवधारी अपने आस–पास के वातावरण के साथ क्रिया करते रहते हैं। जैसे आवास, भोजन आदि के लिए जीवधारियों की निर्भरता निर्जीव एवं सजीव दोनो पर होती है अतः जीवित और अजीवित के बीच परस्पर अन्तःसम्बन्ध होता है। इस अन्तः सम्बन्ध से एक तन्त्र बनता है जिसे पारिस्थितिक तन्त्र कहते हैं।''**पारिस्थितिक तन्त्र** वातावरण के सभी जैविक एवं अजैविक घटकों के पूर्ण समन्वय से बनी एक संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है।'' टेंसले ने सन् 1935 में सर्वप्रथम परितन्त्र (Ecosystem) शब्द का प्रयोग किया था।

20.1.2.1 परिस्थितिक तंत्र के घटक (Components of ecosystem)

पारितंत्र जिन रचनाओं से मिलकर बना होता है। उन्हे परिस्थितिकीय घटक कहते हैं। ये घटक दो प्रकार के होते हैः संरचनात्मक एवं कार्यात्मक घटक ।

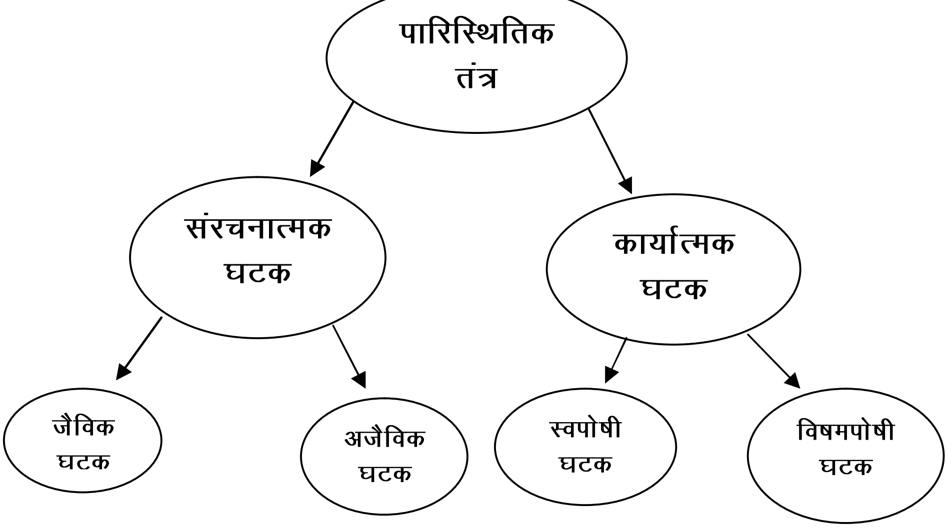

चित्र 1.1ः पारिस्थितिक तंत्र के घटक

20.1.2.1.1 संरचनात्मक घटक (Structural components) : ये दो प्रकार के होते है।

(अ) जैविक घटक (Biotic components) : पारितंत्र के जीवित भाग को जैविक घटक कहते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं :

(i) उत्पादक (Producer) : पारितंत्र में हरे पौधे भोजन का निर्माण करते हैं इसलिये ये उत्पादक कहलाते हैं। जैसे – काई (शैवाल), घास एवं सभी पर्णहरिम (क्लोरोफिल) युक्त पौधे। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के दौरान ये सौर ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित कर अपना भोजन स्वयं बनाते है इसलिए इन्हें स्वपोषी कहा जाता है।

(ii) उपभोक्ता (Consumer) : पारितंत्र में वे जीव जो अपने भोजन के लिये दूसरे जीवों पर आश्रित होते हैं उपभोक्ता कहलाते हैं। उपभोक्ता तीन प्रकार के होते हैं–

(क) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumer) ः ये शाकाहारी होते हैं, जो भोजन के लिए पेड़–पौधो पर निर्भर रहते हैं । जैसेः गाय, खरगोश,हिरण,बकरी आदि।

(ख) द्वितीयक उपभोक्ता (secondary consumer) ः ये शाकाहारी जीव को अपना भोजन बनाते है । इन्हे प्राथमिक मांसाहारी भी कहा जाता है । उदाहरण – भेडिया, लोमडी, कुत्ता, बिल्ली, आदि।

(ग) तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary consumer) : ये द्वितीयक उपभोक्ता को अपना भोजन बनाते हैं , इन्हे द्वितीयक मांसाहारी भी कहा जाता है। शाकाहारी एवं मासांहारी दोनों प्रकार के प्राणियों को खाने से इन्हे सर्वोच्च या अन्तिम उपभोक्ता भी कहते है। जैसेः मोर, बाज, शेर, चीता, आदि।

(iii) अपघटक (Decomposer) : उत्पादक एवं सभी श्रेणी के उपभोक्ताओं की मृत्यु के पश्चात सूक्ष्म जीवों के द्वारा इनका अपघटन किया जाता है, जिससे ये सरल कार्बनिक पदार्थों में टूट जाते हैं। इन सूक्ष्म जीवों को अपघटक कहते हैं। ये सरल कार्बनिक पदार्थ पुनः पौधों द्वारा भोजन निर्माण में उपयोग में लाए जाते हैं।

(ब) अजैविक घटक (Abiotic components) : पारिस्थितिक तंत्र में पाये जान वाले निर्जीव घटकों को इस श्रेणी में रखा गया है। ये तीन प्रकार के होते हैं :

(i) कार्बनिक घटक (Organic components) : ये पदार्थ जीवों (पौधों एवं जन्तुओं) के मृत अवशेष होते हैं। उदाहरण– कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, लिपिड इत्यादि।

(ii) अकार्बनिक घटक (Inorganic components) – ये कार्बनिक पदार्थ बनाने में मदद करते हैं, ये कभी समाप्त नही होते। उदाहरण– कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, सल्फर, फास्फोरस, कार्बन डाईऑक्साइड , आक्सीजन आदि।

(iii) जलवायुवीय घटक (Climatic components) – सूर्य का प्रकाश, तापमान, नमी, वर्षा आदि।

20.1.2.1.2 कार्यात्मक घटक (Functional components) – ये दो प्रकार के होते हैं।

(अ) स्वयंपोषी (Autotrophic) :– जो जीव अपना भोजन स्वयं बनाते हैं, स्वयंपोषी कहलाते हैं। उदाहरण– जैसे हरे पौधे।

(ब) विषमपोषी या परपोषी (Heterotrophic) :– जो जीव अपना भोजन स्वयं नही बना सकते और दूसरों पर भोजन के लिए आश्रित होते हैं उन्हें विषमपोषी जीव कहते हैं; विषमपोषी जीव निम्नांलिखित प्रकार के होते हैं–

(i) शाकाहारी (Herbivorous) – ये वनस्पतियों से अपना भोजन प्राप्त करते हैं।

(ii) मांसाहारी (Carnivorous)– ये जन्तुओ का भक्षण करते हैं फलतः मांसाहारी कहलाते हैं।

(iii) सर्वाहारी (Omnivorous)– ये वनस्पतियों व जन्तुओं का भक्षण करते हैं फलतः सर्वाहारी कहलाते हैं।

(iv) परजीवी (Parasite) – ये पोषण के लिये दूसरे जीवों पर आश्रित होते हैं।

(v) मृतोपजीवी (Saprophyte) - ये सड़े–गले मृत पदार्थों से भोजन ग्रहण करते हैं।

1.2.2 खाद्य शृंखला (Food chain) : भोजन श्रंखलाबद्ध तरीके से पौधों (उत्पादक) से प्राथमिक उपभोक्ता में फिर द्वितीयक एवं तृतीयक उपभोक्ता में पहुँचता है और अंत में प्राकृतिक अपघटकों द्वारा अपघटित कर दिया जाता है। इस तरह प्रकृति में जीव एक दूसरे का भक्षण करते रहते हैं यदि इन्हें एक क्रमबद्ध रूप से रखें तो एक श्रंखला बनती है। यही क्रम **खाद्य श्रंखला** कहलाता है। दूसरे शब्दों में ''भोजन रूपी ऊर्जा का स्थानान्तरण पौधों से

शाकाहारी जन्तुओं और शाकाहारी से मांसाहारी प्राणियों तक भक्षण की निरंतर विधि के द्वारा होते रहने को खाद्य श्रंखला कहते है।'' अर्थात ''**खाद्य शृंखला वह क्रम है जिसमे एक जीव दूसरे जीव तक उर्जा का स्थानान्तरण करता है।''**

1.2.3 खाद्य जाल (Food web): भोजन केवल शृंखला के रूप में ही आगे बढता है, ऐसा नहीं है। बहुत से जीव शाकाहारी भी होते हैं और मांसाहार भी ग्रहण करते हैं। एक प्राणी एक से अधिक आहार शृंखला से संबंधित हो सकता है जिससे एक जाल सदृश रचना बनती है, जिसे **खाद्य जाल** कहते है अर्थात ''प्रकृति में कोई भी खाद्य श्रंखला स्वतंत्र नहीं होती। अत: अनेक खाद्य श्रंखलाओं के आपस में जुडने से खाद्य जाल निर्मित होता है।''

कीटनाशकों के छिडकाव से केवल कीटों को ही नुकसान नहीं पहुँचता वरन् यह खाद्य शृंखला के प्रत्येक पोषक स्तर के जीव को प्रभावित करते हैं और सभी जीवों को नुकसान पहुॅचाते हैं। डी.डी.टी. का छिडकाव इसी कारण से प्रतिबंधित है ।

20.1.2.4 पोषक स्तर (Trophic levels)

पारिस्थितिक तंत्र में हरे पौधे से भोजन ग्रहण करने वाले शाकाहारी जीव होते हैं। शाकाहारी को मांसाहारी खाते हैं। मांसाहारी को खाने वाले जीव भी होते हैं। इस तरह भोजन पौधों से शकाहारी में, शाकाहारी से मांसाहारी में पहुँचता है। इस तरह ''भोजन के आधार पर जीवों के स्तर बनते हैं, जिन्हें **पोषक स्तर** कहते हैं।'' अर्थात ''किसी पारितन्त्र के उत्पादक एवं उपभोक्ता के विभिन्न स्तरों को पोषक स्तर कहते हैं।''

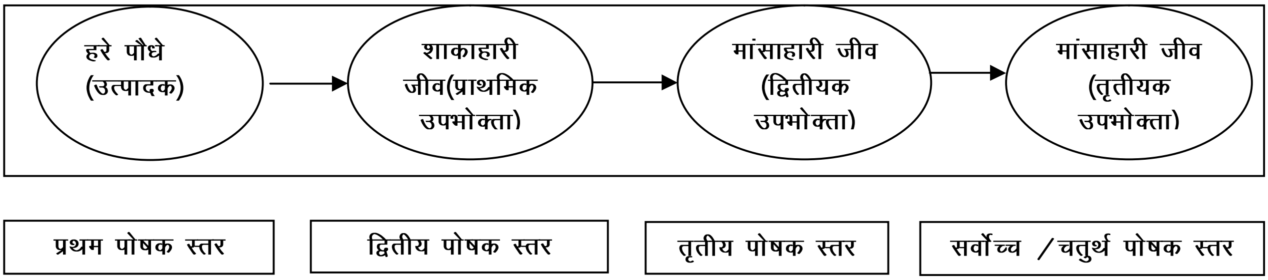

चित्र 1.2 : पोषक स्तर

किसी पारितंत्र में पोषक स्तरों की संख्या अलग–अलग हो सकती है। जितना जटिल पारितंत्र होगा उतनी ही अधिक पोषक स्तरों की संख्या होगी। किसी पारिस्थिक तंत्र में उपभोक्ताओं या पोषक स्तरों की संख्या कितनी भी हो किन्तु अंतिम पोषक स्तर वह होता है जिसे कोई जीव खा नहीं सकता इसलिये इसे सर्वोच्च पोषक स्तर और इस स्तर के उपभोक्ता को अंतिम उपभोक्ता कहते हैं।

20.1.2.5 पारिस्थितक तन्त्र के कार्य (Functon of ecosystem)

किसी पारितंत्र के दो प्रमुख कार्य होते हैः

(i) ऊर्जा प्रवाह (Energy flow) : सभी जैविक घटकों को जैविक क्रिया करने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता होती है। सूर्य ऊर्जा का प्रमुख स्त्रोत है। **ऊर्जा को केवल पौधे ही रासायनिक ऊर्जा में बदलते हैं।** यह रासायनिक ऊर्जा उत्पादक, उपभोक्ता से होते हुए अपघटक तक जाती है। इस प्रकार से ''किसी परितंत्र में ऊर्जा स्रोत से ग्रहण की गई ऊर्जा को उत्पादकों से विभिन्न उपभोक्ताओं और अपघटकों की ओर क्रमशः स्थान्तरित होने की क्रिया को ऊर्जा प्रवाह कहते हैं।''

ऊर्जा का प्रवाह एक दिशीय या अनुत्क्रमणीय होता है।

हरे पौधे (उत्पादक) शोषित ऊर्जा का 90 प्रतिशत भाग स्वयं अपने जैविक क्रियाओं में खर्च करते हैं, जबकि शेष 10 प्रतिशत भाग प्राथमिक उपभोक्ता में चली जाती है। इस ऊर्जा का 90 प्रतिशत भाग प्राथमिक उपभोक्ता में संचित हो जाता है तथा शेष 10 प्रतिशत द्वितीयक उपभोक्ता (मानव) में पहुँचता है। इस प्रकार केवल 10 प्रतिशत ऊर्जा ही अगले पोषक स्तर पर जाती है इस कारण से 10 प्रतिशत का नियम भी कहते हैं।

(ii) जैव भू–रासायनिक चक्र (Bio geo chemical cycles) : पारितंत्र में कुछ पदार्थ जैविक घटकों से अजैविक घटको में और अजैविक घटकों से जैविक घटकों में पहुँचते रहते हैं, जिससे एक चक्र बनता है। इस चक्र को जैव भूरासायनिक चक्र कहते हैं–

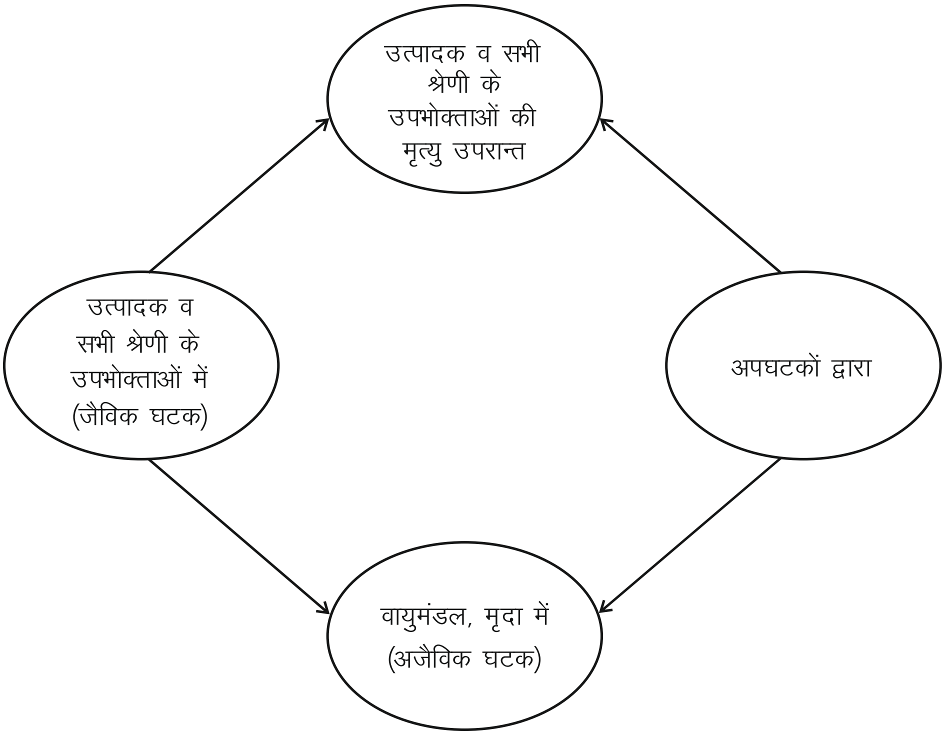

चित्र 1.3: जैव भूरासायनिक तत्व

पोषक तत्व उत्पादक से प्राथमिक, द्वितीयक और फिर तृतीयक उपभोक्ताओ में पहुँच जाते हैं। इन सबकी मृत्यु के बाद अपघटक इनका विघटन कर अजैविक तत्व को वातावरण में मुक्त कर देते है। ये तत्व पुनः उत्पादकों द्वारा ग्रहण कर लिये जाते है। मुख्य पोषक तत्व कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन और नाइट्रोजन है जो जीवों के जीवद्रव्य का अधिकांश भाग बनाते हैं।

(अ) कार्बन चक्र (Carbon cycle)

प्रकृति में कार्बन चक्र का प्रमुख भाग वायुमण्डलीय कार्बन डाईऑक्साइड है। वायुमंडल में 0.032% कार्बन डाईऑक्साइड होती है। कार्बन जल, जीवाश्म ईंधन और अवसादी चट्टानों में भी पाई जाती है। पौधे वायु मंडल की CO_2 को लेकर प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के द्वारा अपना भोजन बनाते हैं और ऑक्सीजन (O_2) छोड़ते हैं। हालांकि पौधे श्वसन क्रिया में CO_2 छोडते हैं जो कि वायुमंडल में पहुँचती रहती है।

- हरे पौधों को शाकाहारी जीव खाते हैं कार्बोहाइड्रेट के रूप में CO_2 उपभोक्ता के शरीर में पहुँच जाती है। उपभोक्ताओं के श्वसन से CO_2 निकलती है, जो पुनः वायुमण्डल में मिल जाती है।
- पेड पौधे और जीव जंतुओं के शरीरों के अपघटन से CO_2 मुक्त होती है, और वायुमंडल में मिल जाती है।
- मृत पेड पौधे एवं जीवों के अवशेषों के जलने से CO_2 मुक्त होती है, जो वायुमंडल में मिल जाती है। इस तरह कार्बन चक्र चलता रहता है।

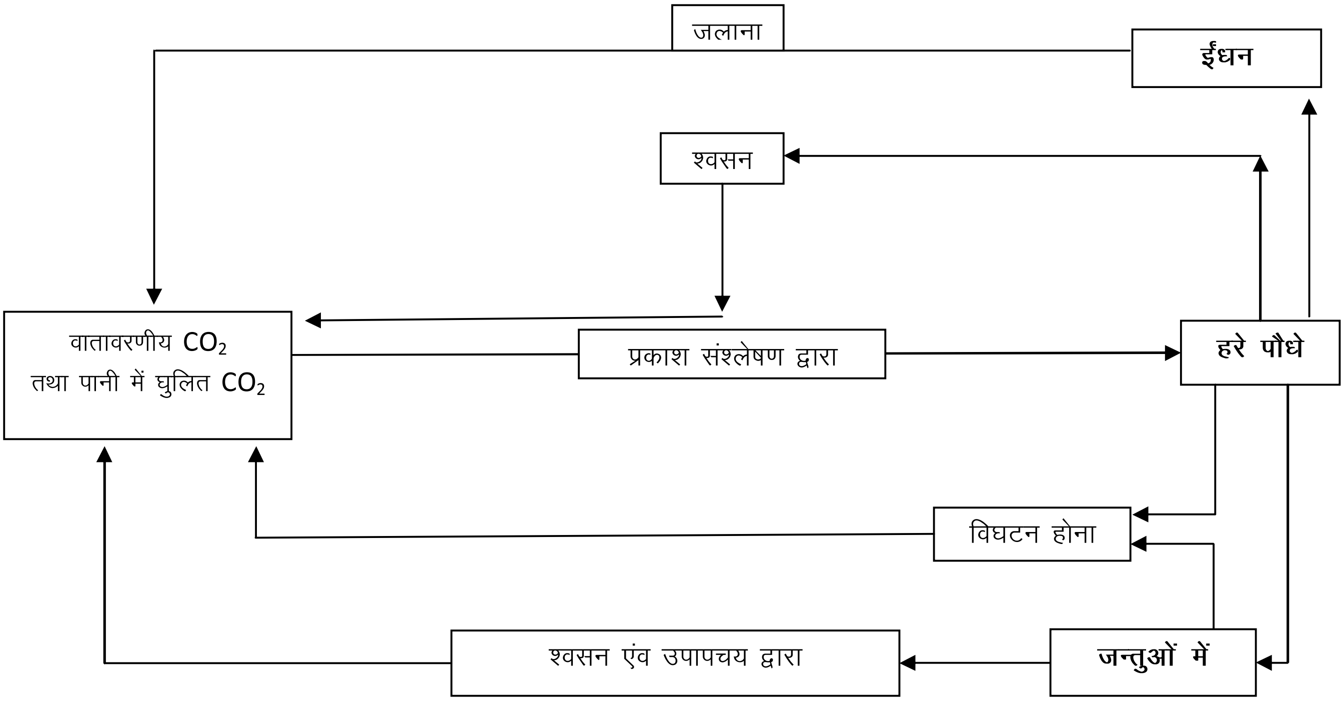

चित्र 1.4 : कार्बन चक्र

(ब) नाइटोजन चक्र (Nitrogen cycle)

जीवों द्वारा प्रोटीन संश्लेषण के लिये नाइट्रोजन एक आवश्यक तत्व है। स्वतंत्र नाइट्रोजन वायुमंण्डल में 78% है। किन्तु जीव स्वतंत्र नाइट्रोजन का उपयोग नहीं कर पाते हैं। यह जब नाइट्रेट में बदल जाती है तब उसका उपयोग पौधे कर सकते हैं। नाइट्रोजन चक्र में निम्नलिखित क्रियाएँ सतत चलती रहती हैं :

(i) नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Nitrogen fixation): वायुमंडलीय स्वतंत्र नाइट्रोजन **एजोटोबैक्टर (आक्सी), क्लास्टीडियम (अनाक्सी)** और **राइजोबियम** नामक जीवाणुओ द्वारा नाइट्रेट (NO_3^-) में बदल दी जाती है। ये नाइट्रेट पानी में घुलनशील होते हैं। इस पानी को पौधा अवशोषित करता है और नाइट्रेट के रूप में नाइट्रोजन पौधों में पहॅुच जाती है और यह कार्बनिक पदार्थ जैसे प्रोट्रीन बनाने में काम आती हैं।

(ii) अमोनियाकरण (Ammonification) : इस क्रिया में कार्बनिक पदार्थ मृदा के सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा अमोनिया व एमीनो अम्ल में विघटित कर दिए जाते हैं। अमोनिया वायुमंडल में और एमीनोअम्ल मिट्टी में मिल जाते हैं।

(iii) नाइट्रीकरण (Nitrification) : उपापचयी आवयकताओं के बाद जीव अतिरिक्त नाइट्रोजन को मृदा में उत्सर्जित करतें हैं इसके पश्चात् रासायनिक स्वपोषी जीवाणु समूह द्वारा दो चरणों की प्रक्रिया से अमोनिया का नाइट्रेट (NO_2^-) में परिवर्तन होता है जिसे नाइट्रीकरण कहते हैं। प्रथम चरण में **नाइट्रोसोमोनास** जीवाणु द्वारा अमोनिया का नाइट्राइट में एवं दूसरे चरण में **नाइट्रोबैक्टर** जीवाणु द्वारा नाइट्राइट को नाइट्रेट (NO_3^-) में बदल दिया जाता है। कम नमी वाली मृदा में वायु की कमी के कारण नाइट्रीकरण की दर घट जाती है।

(iv) विनाइट्रीकरण (Denitrification)– इस क्रिया में विनाइट्रीकारक जीवाणु (**स्यूडोमोनास**) नाइट्रेट को पहले नाइट्राइट में और फिर नाइट्राइट को नाइट्रिक आक्साइड (NO) में बदल देता है। बाद में इस नाइट्रिक आक्साइड का रुपान्तरण क्रमशः नाइट्रस आक्साइड (N_2O) और नाइट्रोजन (N_2) में होता है। यह मुक्त नाइट्रोजन वायुमंडल में लौट जाती है एवं यह चक्र निरंतर चलता रहता है।

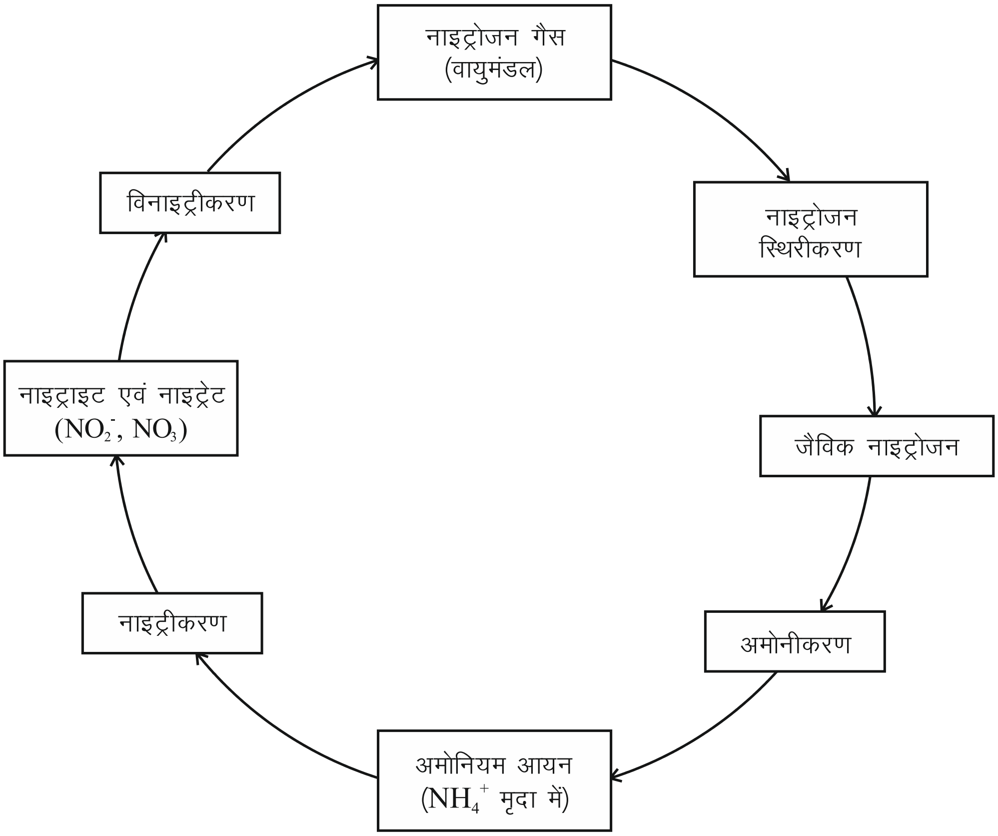

चित्र 1.5 : नाइट्रोजन चक्र

(स) ऑक्सीजन चक्र (Oxygen cycle)

वायुमण्डल मे लगभग 21% प्रतिशत ऑक्सीजन होती है। इसका चक्रीकरण कार्बन डाइ–आक्साइड एवं जल के साथ होता है। सभी जन्तु वायुमण्डल अथवा जल से ऑक्सीजन प्राप्त करते है। श्वसन क्रिया द्वारा गैस के रूप मे ली गयी आक्सीजन का उपयोग अन्तःकोशिकीय ऑक्सीकरण मे होता है परिणामस्वरूप कार्बन डाइ–आक्साइड तथा जल उत्पन्न होता है। कार्बन डाइ–आक्साइड श्वसन क्रिया द्वारा वातावरण मे मुक्त हो जाती है। जल का कुछ भाग शरीर मे काम आ जाता है तथा कुछ भाग उत्सर्जन द्वारा वापस वातावरण मे चला जाता है।

$$C_6H_{12}O_6 + 6O_2 \longrightarrow 6CO_2 + 6H_2O + \text{ऊर्जा}$$

सभी हरे पौधे सूर्य प्रकाश की उपस्थिति में कार्बन डाइ–आक्साइड तथा जल का उपयोग पर प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा कार्बनिक भोज्य पदार्थों का निर्माण करते हैं। इस क्रिया में ऑक्सीजन मुक्त होती है जो वायुमण्डल मे मिल जाती है।

$$6CO_2 + 12H_2O \xrightarrow[\text{पर्णहरिम}]{\text{सूर्यप्रकाश}} C_6H_{12}O_6 + 6O_2 + 6H_2O$$

कार्बनिक भोज्य पदार्थों में निहित कार्बोहाइड्रेट विभिन्न पोषक स्तरों (शाकाहारी एवं मॉसाहारी जन्तुओं) में पहुँचता है और अन्त में श्वसन क्रिया में ऑक्सीकृत होकर कार्बन डाइ–आक्साइड तथा जल के रूप मे वातावरण में मुक्त हो जाता है, जिन्हें हरी वनस्पतियाँ पुनः ग्रहण करती हैं।

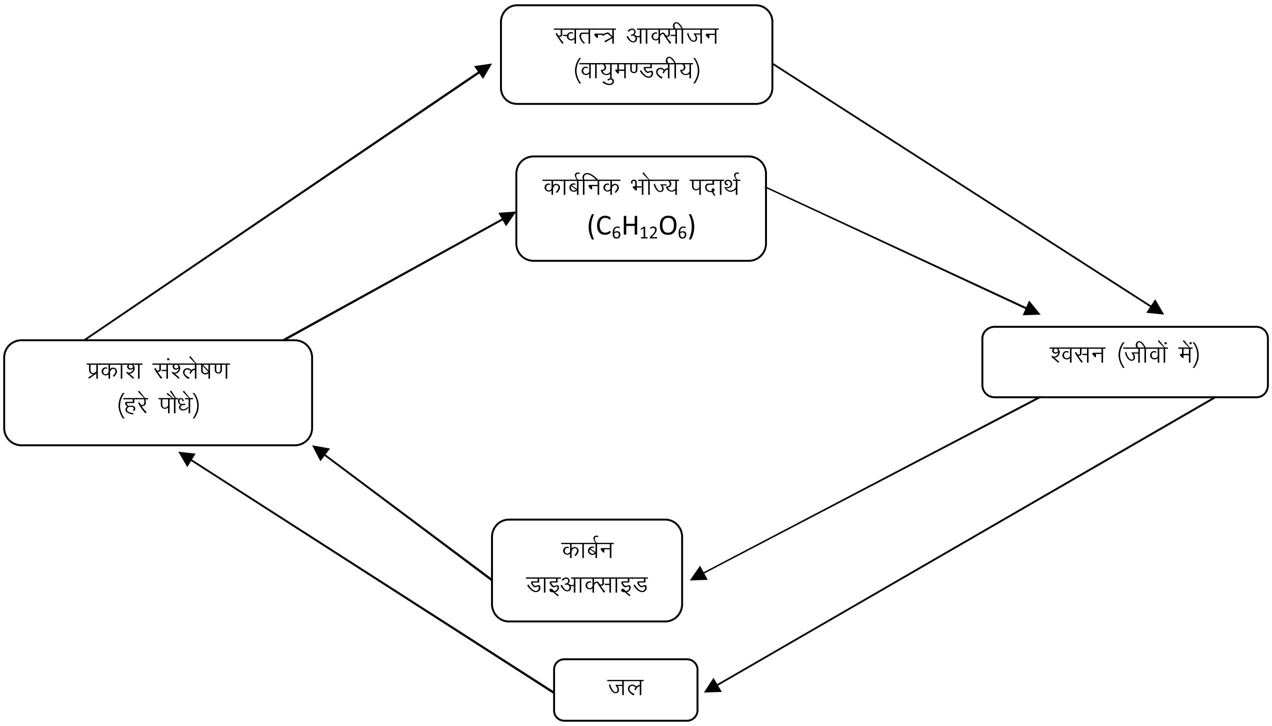

चित्र 1.6 : आक्सीजन चक्र

20.1.2.7 पारिस्थितिक तृन्त्र के प्रकार (Types of ecosystem) : पारिस्थितिक तन्त्र को मूल रूप से दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है –

1. प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्र
2. कृत्रिम पारिस्थितिक तन्त्र

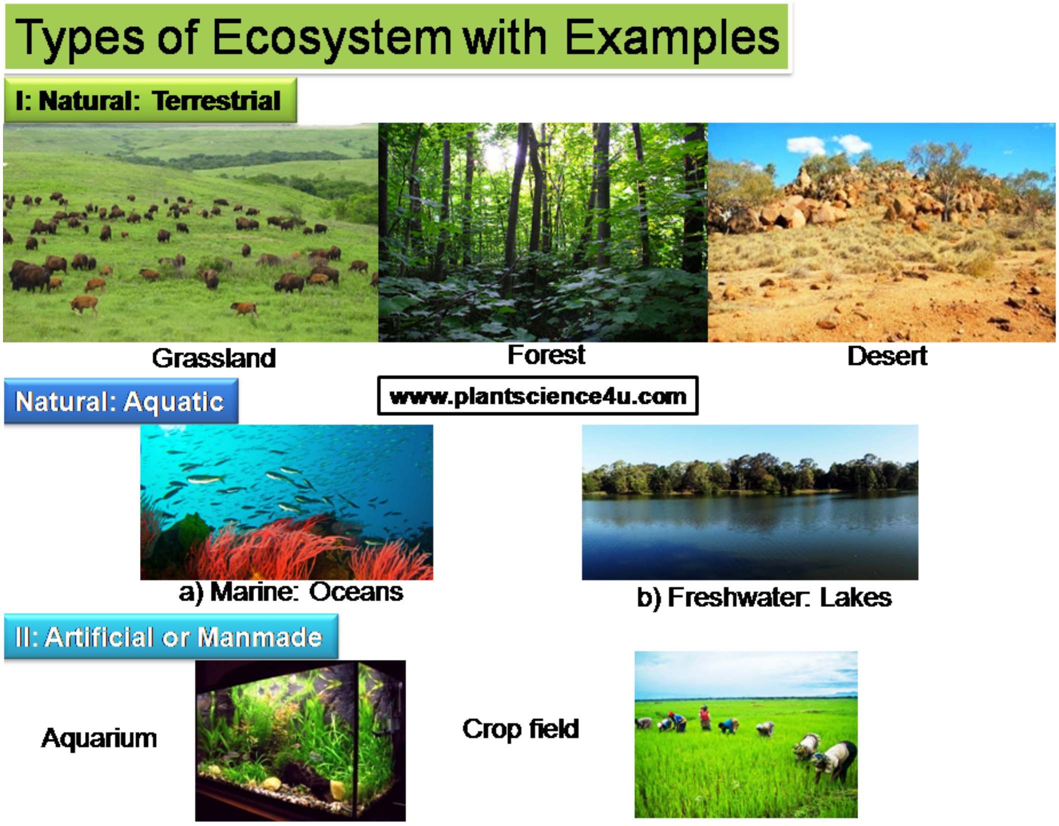

चित्र 1.7: पारिस्थितिक तंत्र के प्रकार

1. प्राकृतिक पारिस्थितिक तन्त्र (Natural ecosystem)

इस प्रकार के पारिस्थितिक तन्त्र प्राकृतिक होते हैं तथा इनमें मानव हस्तक्षेप नहीं होता। इसके अन्तर्गत निम्न दो प्रकार के पारिस्थितिक तन्त्र आते हैं :

(अ) जलीय पारिस्थितिक तन्त्र।

(ब) स्थलीय पारिस्थितिक तन्त्र।

अ. **जलीय पारिस्थितिक तन्त्र (Aquatic ecosystem)**– इनमें दो प्रकार के पारिस्थितिक तंत्र आते हैं। स्वच्छ जलीय एवं लवण जलीय पारिस्थितिक तंत्र ।

(i) **स्वच्छ जलीय पारिस्थितिक तन्त्र (Fresh water ecosystem)**– इसके अन्तर्गत बहते हुए या रूके हुए जल के पारिस्थितिक तन्त्र जैसे नदी, झरनें, तालाब, झील इत्यादि आते हैं।

तालाब का परिस्थितिक तन्त्र (Pond ecosystem) : तालाब स्वच्छ जलीय पारिस्थितिक तन्त्र की एक स्वनियंन्त्रित एवं सम्पूर्ण इकाई है। इसमे निम्न घटक पाए जाते हैं –

(क) अजैविक घटक (Abiotic components) : तालाब में अनेक अकार्बनिक तत्व, ऑक्सीजन, कार्बन डाइ–डाइआक्साइड एवं अन्य गैसें जल मे घुलित अवस्था में पायी जाती हैं। अनेक पोषक तत्व मिट्टी में भी पाये जाते हैं। तालाब के हरे पौधे सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करते हैं। पौधों एवं जन्तुओं के मृत्योपरान्त विघटन से अजैविक घटकों की जल में निरन्तर आपूर्ति होती रहती है।

(ख) जैविक घटक (Biotic components) : जैविक घटकों के अन्तर्गत उत्पादक, उपभोक्ता एवं उपयोगकर्ता आते हैं।

- **उत्पादक (Producer)**– इसके अंतर्गत तालाब मे पाये जाने वाले क्लोरोफिल युक्त वृहतपादपों जैसे– कारा, हाइड्रिला, जलकुंभी आदि आते हैं। ये क्लोरोफिल की उपस्थित में सूर्य के प्रकाश से ऊर्जा प्राप्त करके CO_2 तथा जल की सहायता से प्रकाश संश्लेषण के द्वारा कार्बनिक भोज्य पदार्थों का निर्माण करते हैं।
- **उपभोक्ता (Consumer) -** इसके अन्तर्गत परपोषी जन्तु आते हैं।

क. **प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumer) -** इनमें तालाब के जल में पाए जाने वालें अनेक छोटे – छोटे कीट, क्रस्टेशियन्स तथा छोटी मछलियाँ आदि आती हैं जो जलीय पौधों की पत्तियों एवं शैवालों को खाती हैं। पोषण की दृष्टि से सभी प्राथमिक उपभोक्ता शाकाहारी होते हैं।

ख. **द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary consumer)-** ये माँसाहारी होते हैं जो शाकाहारी प्राथमिक उपभोक्ताओं का शिकार करके खाते हैं। इसके अन्तर्गत कुछ जलीय कीट जैसे– डाइटिस्कस, ड्रेगनफलाई लार्वा,मेंढक, मछलियॅा इत्यादि आती हैं।

ग. **तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary consumer)**– तालाब में पायी जाने वाली कुछ बड़ी मछलियॅा जो द्वितीयक उपभोक्ताओं को खाती हैं, तृतीयक अथवा उच्चतम उपभोक्ताओं की श्रेणी में आती है।

- **अपघटनकर्ता (Decomposer)** – तालाब के जल तथा मिट्टी में अनेक जीवाणु तथा कवक पाये जाते है जो उत्पादकों एवं उपभोक्ताओं के सड़े गले कार्बनिक पदार्थो को सरल अवयव में अपघटित कर देते हैं अतः इन्हें अपघटनकर्ता कहते है। इनके द्वारा अपघटित पदार्थ फिर से जल में वापस आ जाते हैं, जहाँ से इन्हें उत्पादक ग्रहण करते हैं।

(ii) लवण जलीय पारिस्थितिक तन्त्र (Marine ecosystem) – इसके अन्तर्गत सागर तथा महासागर जैसे पारिस्थितिक तन्त्र आते हैं।

(ब) स्थलीय पारिस्थतिक तंत्र–

(i) घास के मैदान का पारिस्थतिक तंत्र

(क) अजैविक घटक (Abiotic Components) : सूर्य का प्रकाश, वायु, मिट्टी में उपस्थित कार्बन–डाई आक्साइड, नाइट्रेट्स, सल्फेट्स, फास्फेट्स तथा कुछ सूक्ष्म तत्व अजैविक घटक के रुप में घास के मैदानों के पारिस्थतिक तंत्र में पाये जाते हैं।

(ख) जैविक घटक (Biotic Components)

- **उत्पादक (Producer)-** घास कें मैदान में उत्पादक के रुप में मुख्यतया डाईकैन्थियम, सायनोडॉन, सिटेरिया आदि घासों की विभिन्न प्रजातियाँ, तृणेतरों (forbs) की प्रजातियॉ तथा झाड़ियाँ (Shrubs) पायी जाती हैं जो अजैविक घटकों की सहायता से प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा ग्लूकोज का संश्लेषण करती हैं।
- **उपभोक्ता (Consumer)-** इसके अर्न्तगत परपोषी जीव आते हैं।

(क) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary Consumer)- प्राथमिक उपभोक्ता के अर्न्तगत मुख्यतया घास चरने वाले जन्तु जैसे हिरण, खरगोश,गाय भैंस तथा अन्य शाकाहारी जन्तु जैसे चूहे आते हैं। कुछ शाकाहारी कीट जैसे– टिड्डे, दीमकें, भी बहुतायत में घास के मैदान में पाये जाते हैं।

(ख) **द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary consumer)-** इसके अन्तर्गत वे मांसाहारी जन्तु आते हैं जो शाकाहारी जन्तु को अपना शिकार बनाते हैं। जैसे– मेढ़क, छिपकली, सॉप, गिरगिट, लोमड़ी, सियार आदि।

(ग) तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary consurur): बाज के रुप में तृतीयक उपभोक्ता भी घास के मैदान में पाये जाते हैं जो द्वितीयक उपभोक्ताओं का शिकार करते हैं।

- **अपघटनकर्ता (Decomposer)-** कुछ बैक्टीरिया, एक्टिनोमाइसिटीज तथा कवक आदि अपघटनकर्त्ता के रुप में मिट्टी में पाये जाते हैं जो सड़े–गले कार्बनिक पदार्थों को अपघटित करके साधारण पदार्थों में बदल देते हैं ताकि वे उत्पादकों द्वारा उपयोग में लाए जा सकें।

(ii) वन पारिस्थितिक तन्त्र (Forest ecosystem)

(क) अजैविक घटक (Abiotic components) : मिट्टी और वातावरण में पाये जाने वाले सभी अकार्बनिक तथा कार्बनिक पदार्थ पौधों के लिए आवश्यक होते हैं। वनों मे प्राणियों की मृत्यु के कारण तथा पौधों से कार्बनिक पदार्थ अधिक मात्रा में पाये जाते है। पादप समुदाय के जटिल स्तरण के कारण प्रकाश की दशा में विभिन्नता पायी जाती हैं।

(ख) जैविक घटक (Biotic component) : उत्पादक (Producer) - वनो में वृक्ष मुख्य रूप से उत्पादक का कार्य करते हैं। इन वृक्षों की जातियों में विभिन्नता तथा स्तरण बहुत स्पष्ट होता है। वृक्षों में मुख्य रूप से

टीक, साल, बूटिया (Buter) तथा शीतोष्ण शंकुधारी वन में एबीस (Abies), पाइनस (Pinus) आदि पाये जाते हैं।

- **उपभोक्ता (Consumer) -**

  (क) प्राथमिक उपभोक्ता (Primary consumer) - प्राथमिक उपभोक्ता के रूप में शकाहारी जन्तु जैसे भृंग टिड्डे, दीमक, गिलहरी, खरगोश , हिरन आदि पाये जाते हैं।

  (ख) द्वितीयक उपभोक्ता (Secondary consumer) - इनमें माँसाहारी जन्तु जैसे सॉप, छिपकली, पक्षी, लोमडी आदि आते है जो शाकाहारी जन्तुओं का भक्षण करते हैं।

  (ग) तृतीयक उपभोक्ता (Tertiary consumer)- इस श्रेणी में उच्चतम उपभोक्ता जैसे शेर, चीता, तेन्दुआ आदि जन्तु आते हैं।

- **अपघटनकर्ता (Decomposer)-** अनेक प्रकार के जीवाणु जैसे बैसिलस (Bacillus), स्यूडोमोनास (Pseutomonas) एवं कवक जैसे एस्पर्जिलस (Aspargillus), आल्टरनेरिया (Alternaria) इत्यादि मिट्टी में रहकर पत्तियों एवं मृत प्राणियों के शरीर का अपघटन करते हैं।

(iii) मरूस्थलीय पारिस्थितिक तन्त्र (Desert ecosystem)

मरूस्थलीय पारिस्थितिक तन्त्र की संरचना अन्य प्रकार के पारिस्थितिक तन्त्रों से भिन्न होती है। इसका प्रमुख कारण ताप तथा जल जैसे महत्वपूर्ण कारकों की पराकाष्ठा होती है।

- **उत्पादक (Producer)** - उत्पादक के रूप में मुख्यतया झाडियाँ तथा कहीं – कहीं थोडी घास एवं कुछ वृक्ष पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त मरूस्थलीय क्षेत्रों में कैक्टस पाये जाते हैं।
- **उपभोक्ता (Consumer)-** मुख्यतया सरीसृप एवं कीट उपभोक्ता के रूप में पाये जाते हैं। हालांकि कुछ पक्षी एवं ऊँट भी इस श्रेणी में आते हैं।
- **अपघटनकर्ता** (Decomposer)- इनकी संख्या मरूस्थल में बहुत कम होती है।इनमें उच्च ताप पर जीवित रहने वाले कुछ जीवाणु एवं कवक आते हैं।

2. **कृत्रिम पारिस्थितिक तन्त्र (Aritificial ecosystem) :** इस प्रकार के पारिस्थितिक तन्त्रो का निर्माण मानव द्वारा कृत्रिम रूप से किया जाता है। ये मुख्ययता कृषि भूमि (Agricultural land) तथा जलजीवशाला (Aquarium) के रूप मे पाये जाते है।

पारिस्थितिक पिरामिड (Ecological Pyramids) : किसी भी पारिस्थितक तन्त्र में उसके उत्पादकों एवं विभिन्न स्तर के उपभोक्ताओं (प्राथमिक, द्वियीयक तथा तृतीयक) की संख्या ,जीवभार तथा संचित ऊर्जा में परस्पर एक प्रकार का सम्बन्ध होता है। इन्हीं सम्बन्धों को व्यक्त करने वाले चित्रों को **पारिस्थितिक पिरैमिड** कहते हैं। पारिस्थितिक

पिरैमिड की विचारधारा सर्वप्रथम चार्ल्स एल्टन ने 1927 में प्रस्तुत की थी । फलतः इन्हें एल्टोनियन पिरैमिड भी कहते हैं।

''किसी पारिस्थितिक तन्त्र में खाद्य श्रंखला के विभिन्न पोषी स्तरों की संख्या, जीवभार तथा संचित ऊर्जा का रेखाचित्रीय निरूपण पारिस्थितिक पिरैमिड कहलाता है।''

पारिस्थितिक पिरैमिड मुख्यतया: तीन प्रकार के होते हैं :

(i) **जीवसंख्या का पिरैमिड (ii). जीवभार का पिरामिड (iii). संचित ऊर्जा का पिरैमिड।**

(i) जीवसंख्या का पिरामिड (Pyramid of numbers)- ''ऐसा पिरामिड जिसके द्वारा किसी पारिस्थितिक तन्त्र के उत्पादकों एवं विभिन्न श्रेणी के उपभोक्ताओं की संख्या के संम्बंधों के बारे में बोध होता है, जीवसंख्या का पिरैमिड कहलाता है।'' यदि प्राथमिक उत्पादकों का आकार उपभोक्ताओं के आकार की तुलना में बहुत छोटा होता है तो संख्या का पिरामिड सीधा बनता है अन्यथा उल्टा पिरामिड बनता। जैसे किसी तालाब का **पिरामिड परितन्त्र** बनाये तो चूँकि तालाब में पाये जाने वाले उत्पादकों जैसे डाइएटम्स (Diatoms), प्लवकों (Planktons) तथा शैवालों (Alagae) का आकार बहुत छोटा होता है परन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक होती है अतः ये पिरैमिड का चौडा आधार बनाते हैं। जैसे–जैसे हम ऊपर की तरफ बढ़ते हैं उत्पादकों की विभिन्न श्रेणियों अथवा पोषी स्तरों में पाये जाने वाले जीवों की व्यक्तिगत संख्या कम होती जाती है। परिणाम स्वरूप **सीधा त्रिभुजाकार पिरामिड** बनता है इसके विपरीत यदि हम किसी **वन पारिस्थितिक तन्त्र** का पिरामिड बनायें तो हमें उल्टा पिरामिड प्राप्त होता है। क्योंकि इसमें वृक्षों की संख्या कम होती है जिन पर आश्रित उपभोक्ताओं का आकार तो छोटा होता है परन्तु संख्या अधिक होती है। इसी प्रकार से क्रमशः प्रत्येक पोषी स्तर पर संख्या अधिक होती चली जाती है परिणामस्वरूप **उल्टा पिरामिड** प्राप्त होता है।

(ii) जीवभार का पिरैमिड (Pyramid of biomass) - ''ऐसा पिरामिड जिसके द्वारा किसी पारिस्थितिक तन्त्र के उत्पादकों एवं विभिन्न पोषक स्तरों के उपभोक्ताओं के जीवभार के सम्बन्ध में बोध होता है जीवभार का पिरैमिड कहलाता है।'' जीवभार के पिरैमिड भी सीधे एवं उल्टे दोंनो प्रकार के होते हैं।

स्थलीय पारिस्थितिक तन्त्र में इसके मूल उत्पादकों का जीवभार खाद्य श्रंखला के प्रत्येक स्तर के उपभोक्ता से से अधिक होता है। उदाहरण के तौर पर वन परितन्त्र में किसी समय भी वृक्षों का जीवभार उस पर आश्रित प्रथम श्रेणी के उपभक्ता से अधिक होता है। इसी प्रकार द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के उपभोक्ताओं का जीवभर क्रमशः कम होता चला जाता है। परिणामस्वरूप **सीधा पिरामिड** बनता है। इसके विपरीत **जलीय पारिस्थितिक तन्त्र** जैसे तालाब में उत्पादकों (प्लवक,डाइएटम्स,शैवाल) का भार उनको खाने वाली शाकाहारी मछलियों से कम होता है। बडी

माँसाहारी मछलियॉ जो शाकाहारी मछलियों को खाती हैं का जीवभार सर्वाधिक होता है। परिणामस्वरूप पिरैमिड निरूपण से हमें **उल्टा पिरामिड** प्राप्त होता है।

(iii) ऊर्जा का पिरामिड (Pyramid of energy) - ‘‘जो पिरामिड किसी पारिस्थितिक तन्त्र के विभिन्न पोषण स्तरों के जीवों द्वारा संचित की गई ऊर्जा के परिमाण का बोध कराता है, उसे ऊर्जा का पिरैमिड कहते हैं।’’ खाद्य श्रृंखला के प्रत्येक स्तर के उपभोक्ता (प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक) भोज्य पदार्थों से प्राप्त हुई ऊर्जा का 90 प्रतिशत भाग श्वसन में खर्च का लेते हैं एवं शेष बची 10% ऊर्जा को ही अपने शरीर भार में रुपान्तरित करते हैं। अतः किसी भी पारिस्थितिक तन्त्र के मूल उत्पादकों में सर्वाधिक ऊर्जा होती है जो उपभोक्ताओं की प्रत्येक श्रेणी में क्रमशः कम होती चली जाती है इसी कारण से ऊर्जा का **पिरामिड सदैव सीधा** बनता है।

20.1.3 प्राकृतिक संसाधन– परिभाषा, अर्थ, वर्गीकरण एवं मानवीय संबंध

(Natural resources - definition,meaning, classification and human relation)

परिभाषा – वे सभी संसाधन जो प्रकृति प्रदत्त हैं प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं। जैसे– भूमि, जल, वनस्पति, जन्तु, हवा, प्रकाश, खनिज, इत्यादि।

भारतीय परम्परा में प्रकृति को माता माना गया है चूँकि यह मानव की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। आदिकाल से ही हमनें अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति के संसाधनों का उपयोग ही नहीं बल्कि दोहन किया है इन संसाधनों का हमारी सभ्यता के विकास में उल्लेखनीय योगदान है।

चित्र 1.8: प्राकृतिक ससांधन

अर्थ— जैसा कि स्पष्ट है कि प्राकृतिक संसाधनों का अभिप्राय प्रकृति से है। इन संसाधनों की सतत् उपलब्धता तभी सम्भव है जब उनका बहुत ही सावधानी से उपयोग किया जायें अर्थात् जिस गति से इनको प्रक्ति से निकाला जाये लगभग उसी गति से प्रकृति में इनके संचयन की पद्धति भी अपनायी जाये। संचयन की विधि में इनके संरक्षण की एक अहम भूमिका होगी। संरक्षण से अभिप्राय अपनी अत्यावश्यक आवश्यकताओं के लिए प्राकृतिक संसाधनों का मात्र उपयोग ही है न कि दोहन (Exploitation) या दुरुपयोग. राष्ट्रपिता महत्मा गाँधी ने कहा था कि ''प्रकृति हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम है किन्तु हमारे लालच की पूर्ति में वह अक्षम है (The nature is sufficient for our needs but it is insufficient for our greeds)'' उक्त संसाधनों की सतत् उपलब्धता विशिष्ट चक्रो जैसे—जल चक्र, O_2 चक्र, N_2 चक्र, खनिज चक्र इत्यादि के माध्यम से प्रकृति द्वारा की है। मानव का अनावश्यक व अविवेकपूर्ण हस्ताक्षेप उक्त चक्रो को प्रभावित करता है।

वर्गीकरण (Classification)— प्राकृतिक संसाधनों को मुख्य रुप से दो भागों में बाँटा गया है।

अ. **नवीकरणीय संसाधन (Renewable resources)**— ये वे संसाधन है जिनका लगातार नवीनीकरण (उत्पादन) प्रकृति में होता रहता है फलतः प्रकृति में इनकी उपस्थिति बहुत लम्बे समय तक बनी रहेगी। इनकी उपस्थिति का सन्तुलन तभी बिगड़ सकता है जब इनका केवल अति दोहन ही किया जाये एवम् इनके पुर्नभरण (Recharge) के बारे में पहल न की जाये। जैसे— वायु, जल, मिट्टी, वन, खनिज, खाद्य, अपारम्परिक ऊर्जा स्त्रोत, जीव—जन्तु इत्यादि।

ब. **अनवीकरणीय संसाधन (Non-Renewable resource)**— वे संसाधन जिनका नवीनीकरण एक लम्बे काल चक्र में होता है। अर्थात् यूँ कहे कि इनके नवीनीकरण की गति अति धीमी होती है। इसलिए आवश्यक परिस्थितियों में भी इन प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग अति सावधानी के साथ किया जाये। जैसे— कोयला, प्राकृतिक गैस खनिज, पदार्थ, पेट्रोलियम इत्यादि।

नवीकरणीय संसाधन—

(i) वायु— वायु एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है जिसमें विभिन्न गैसों की मात्रा निश्चित है। इन गैसों की प्रतिशत में परिवर्तन से जीवों हेतु आवश्यक परिस्थितियाँ प्रभावित होती है। जैसे वर्तमान समय में मानवीय गतिविधियों के कारण वायु में CO_2 की मात्रा बढ़ने के कारण हरित गृह प्रभाव एवं वैश्विक उष्णता जैसी विश्वव्यापी समस्याएँ उत्पन्न हो रही है। वायु में अन्य हानिकारक गैसों की मात्रा बढ़ने से वायु प्रदूषण की समस्या तैयार हो रही है।

(ii) जल— यह प्रकृति का अनमोल संसाधन है। जीवधारियों की पृथ्वी गृह में उपस्थिति केवल पानी की उपलब्धता पर निर्भर है। पृथ्वी पर लगभग 75 प्रतिशत भाग जल है। इसी करण से इसे नील ग्रह कहा जाता है। उक्त

जल का 97.4% समुद्रों में 2%, ध्रुवों पर बर्फ के रूप में, 59% भू–जल के रूप एवं 0.01% सतही जल के रूप में उपलब्ध है। अर्थात् 0.6% जल ही पीने के योग्य है। इसी कारण से इसका विवेकपूर्ण उपयोग अति आवश्यक है।

(iii) मिट्टी– पृथ्वी के ऊपरी परत को मिट्टी या भूमि कहते हैं जो कि एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन हैं। हमारे लिए खाद्यान, सब्जियाँ, औषधियाँ, लकड़ी, इत्यादि के पूर्ति मिट्टी में उगने वाले पौधों के द्वारा होती है। वैसे तो यह असमाप्त प्राकृतिक संसाधन है किन्तु विभिन्न कारणों से यह भी प्रदूषित हो रही है। फलतः इसकी उर्वरा क्षमता लगतार कम हो रही है।

(iv) **वन**– वन अति महत्वपूर्ण प्रातिक संसाधन हैं। वनों से हम जलाऊ व इमारती लकडी, औषधियॉ, अनेक वन उत्पाद, प्राणवायु (आक्सीजन) इत्यादि पाते हैं। वन्यजीवों से विभिन्न सामग्री हमको प्राप्त होती है। एक स्वस्थ पर्यावरण हेतु 33% भूमि में वन होने चाहिए आज हमारे देश में यह केवल लगभग 12% है। वनोन्मूलन से पूरे वन पारिस्थितिक तन्त्र की क्रिया पद्धति प्रभावित होती है। जिन सभ्यताओं ने वन संसाधनों का उपयोग सावधानी से किया है वे फली फूली हैं जबकि उनका विनाश करने वाली सभ्यताओं का धीरे–2 ह्मस होता चला गया है। वनों के संरक्षण व विकास हेतु पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने 1988 में एक राष्टीय वन नीति बनाई जिसमें संयुक्त वन प्रबन्धन (Joint forest management) को महत्व दिया गया। इसमें वनों के निर्वहनीय प्रबन्धन के लिए स्थानीय ग्रामीण समुदाय और वन विभाग मिलकर कार्य करते हैं।

(v) खनिज– खनिज एक सुनिश्चित रासायनिक संरचना और सुस्पष्ट भौतिक गुणों वाला रासायनिक पदार्थ है जिससे धातु या अन्य उपयोगी पदार्थ प्राप्त किए जाते हैं। पृथ्वी की पर्पटी में खनिज को बनने में लाखों वर्षों का समय लगता है। धात्विक खनिजों में लोहा, तॉबा, जस्ता, एल्यूमिनियम, मैगंनीज, सोना, चॉदी, प्लैटिनम इत्यादि तथा अधात्विक खनिजों में तेल, गैस, कोयला, नमक, मिट्टी, सिलिका, चूना, ग्रेनाइट, संगमरमर आदि शामिल हैं।

(vi) अपारम्परिक ऊर्जा स्त्रोत– हमारे दैनिक जीवन में ऊर्जा का अति महत्व है। नवीनीकरणीय या गैर पारम्परिक स्त्रोतो में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, सागरीय ऊर्जा, नाभिकीय ऊर्जा इत्यादि, इनका उपयोग भविष्य के लिए लाभप्रद होगा।

(vii) पौधे एवं जन्तु- पेड़ पौधे सौर ऊर्जा को ग्रहण करके सम्पूर्ण जगत हेतु भोजन का निर्माण करते हैं। इन्हीं से हमको ईंधन, वस्तु, चमड़ा, खाद इत्यादि प्राप्त होता है। मानव की आवश्यकता के साथ ही ये पर्यावरणीय सन्तुलन के लिए भी अनिवार्य है। इनके संरक्षण से ही अनेक प्राकृतिक संसाधन स्वमेय संरक्षित हो जाते हैं।

प्राकृतिक संसाधनों का मानवीय सम्बन्ध– मानव और समस्त प्राकृतिक संसाधनों (पृथ्वी, जल, ऊर्जा) के बीच एक घनिष्ट सम्बन्ध है मानव के समस्त आवश्यकताओं यहाँ तक कि मानव जाति के अस्तित्व के लिए इन संसाधनों की उपस्थिति अनिवार्य है। **राम चरित मानस** में आया है कि उक्त प्राकृतिक संसाधनों (पृथ्वी, जल, ऊर्जा, आकाश एवं वायुमण्डल हवा) के द्वारा ही **मानव का अस्तित्व** सम्भव है।

अतः अपने अस्तित्व बनाए रखने के लिए हमको सदैव यह चिन्तन व प्रयास करना चाहिए की हमारी उपस्थिति से प्राकृतिक संसाधनों में उपरोक्त ह्रास के बजाय वृद्धि हो रही है।

प्राकृतिक ससाधनो की उपलब्धता व शुद्धता को बनाए रखने हेतु निम्नलिखित प्रयास होने चाहिए :

1. वृक्षारोपण एवं वर्षा जल संचयन।

2. औद्योगिक, नगरीय व प्रदूषित घरेलू अपशिष्ट जल को आवश्यक उपचार के बाद ही जमीन या जलाशय मे छोडा जाना ।

3. नदियों, तालाबों, कुओं, झीलों, बाँधों एवं अन्य जल स्त्रोतों के संरक्षण हेतु सघन प्रयास ।

4. उघोगों व अन्य कार्यों से उत्पन्न दूषित व विषैली गैसों के सीमित उत्सर्जन हेतु आवश्यक उपकरणों या संयत्रों की स्थापना।

5. वाहनो व घरेलू कार्यो मे कम वायु प्रदूषण उत्पन्न करने वाले ईंधनों (जैसे CNG, LPG इत्यादि) का उपयोग ।

6. कार्बनडाई आक्साइड के न्यूनतम उत्सर्जन के प्रयास (जैसे प्राकृतिक जीवनशैली अपनाना, स्वचालित वाहनों इत्यादि का अति सीमित उपयोग, अपनी आवश्यकताओं को कम करना, कोई भी पदार्थ त्याग करने के पूर्व उसके पुनचक्रण व पुर्नउपयोग की सम्भावना को तलाशने की आदत पैदा करना इत्यादि।

7. परम्परागत उर्जा स्रोतों (कोयला पेट्रोलियम व प्राकृतिक गैस) का संरक्षण तथा उनका सीमित व विवेकपूर्ण उपयोग साथ ही गैर परम्परागत ऊर्जा के उत्पादन एवं उपयोग को बढावा देना ।

8. जैव विविधता का संरक्षण व संवर्धन

9. प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकतानुसार विवेकपूर्ण उपयोग ।

20.1.4 पारिस्थितिक तंत्र और पर्यावरण (Ecosystem and environment)

पारिस्थितिक तंत्र और पर्यावरण में अन्योन्य सम्बन्ध हैं कोई भी परिस्थितिक तंत्र पर्यावरण का ही एक छोटा भाग है, मानव के चारों ओर का घिराव ही पर्यावरण कहलाता है। इसी घिराव में सभी परिस्थितिक तंत्र जैसे भूमि, जल , वन, चारागाह मरूस्थल इत्यादि आ जाते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि जल परिस्थितिक तंत्र में कोई व्यवधान पैदा होता है तो इसी से पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक जल प्रभावित होता है। इसी प्रकार वनोन्मूलन अर्थात पौधे न रहने से वातावरण की CO_2 का O_2 में रूपांतरण नहीं हो पाता है, अतः CO_2 का सान्द्रण बढने लगता है, जो कि अनेक तरह की समस्याएँ जैसे– हरित गृह प्रभाव, वैश्विक ऊष्णता इत्यादि को जन्म देता है। इसी प्रकार घास के मैदान के परिस्थितिक तंत्र मे उत्पादक पौधे के नष्ट होने पर भू – क्षरण बढ़ जाता है जिससे भूमि की उपजाऊ मिट्‌टी टूट जाती है। अतः भूमि बंजर होने लगती है। इस प्रकार परिस्थितिक तंत्र मे होने वाले बदलाव से पर्यावरण के महत्वपूर्ण घटक जैसे जलवायु परिवर्तन जैव विविधता का ह्यास इत्यादि होने लगता है, अतः यदि पर्यावरण को स्वस्थ्य रखना है तो निश्चित ही सभी परिस्थितिक तंत्र के विभिन्न घटकों के मध्य संतुलन को बरकरार रखना पडेगा।

संक्षेप में परिस्थितिक तंत्र और पर्यावरण को अलग नही किया जा सकता यदि परिस्थितिक तंत्र में किसी प्रकार की छेडखानी की जाती है तो निश्चय ही उसका प्रभाव सम्बन्धित पर्यावरण में परिलक्षित होने लगता है।

20.1.5 प्रकृति में उत्पादन, क्षरण एवं पारिस्थितिकी पर प्रभाव

(Productionin nature, degradation and effect on ecology)

प्रकृति में उपस्थित विभिन्न तंत्रो जैसे वन,चारागाह, रेगिस्तान इत्यादि के विभिन्न घटकों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन पारिस्थितिकी कहलाता है, तथा प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र में जैविक घटकों में मुख्य रूप से तीन अंग (उत्पादक, उपभोक्ता व अपघटक) शामिल होते है,यदि प्रकृति में उत्पादन की कमी होती है, तो इस प्रभाव के कारण उपभोक्ताओं के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो जाता है

इसी प्रकार से पारिस्थितिक तंत्र में यदि क्षरण संबधी गतिबिधियों जैसे वनोन्मूलन, भूमि अपरदन, जलदोहन व प्राकृतिक संसाधनों का दोहन इत्यादि को बढावा मिलता है तो निश्चय ही उससे सम्बन्धित पारिस्थितिकी बाधित होती हैं। चूँकि किसी भी पारिस्थितिक तंत्र के सभी घटक (जैविक व अजैविक) आपस में एक दूसरे पर निर्भर हैं, अतः पारिस्थितिक तंत्र के किसी एक अंग में उत्पन्न हलचल पूरे तंत्र को असंतुलित कर देती है। इसी असंतुलन के कारण बहुत सारी समस्याएँ व आपदाएँ जैसे–बाढ, सूखा, जलवायु, परिवर्तन वैश्विक उष्णता, भूस्खलन जैव विविधता का ह्यास इत्यादि उत्पन्न होने लगती है।

उदाहरणार्थ वन पारिस्थितिक तंत्र असंतुलित हो जाने पर मुख्य रूप से जनजातीय लोगो का जीना मुश्किल हो जाता है क्योंकि वे खाद्य, जलावन, औषधि या अन्य दूसरी आवश्यकताओं के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वन पर निर्भर होते हैं, वनों में रहने वाले कीट जैसे, मक्खी, पतंगें, तितलियाँ आदि की संख्या वनों के विनाश के साथ कम होने लगती है इनकी संख्या कम होने से पौधों का परागण कम होने के कारण खेतिहर पैदावार में कमी आ जाती है। वन रहित भूमि पर जल का संचय नहीं हो पाता है एवं जल सीधे बहकर नदियों मे चला जाता है। अर्थात एक तरफ जल संचयन कम हो जाता है वहीं दूसरी तरफ बाढ़ का खतरा बढ जाता है। इसी प्रकार प्राकृतिक घास तंत्रों को कृषि क्षेत्र में परिवर्तित करने पर पुनः पारिस्थितिक तंत्र में व्यवधान पैदा होता है ।

नगरों का गंदा पानी और ठोस अपशिष्ट झीलों और नदियों में छोड़े जाने पर अतिपोषण (Eutrophication) की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है फलतः उत्पादकों को हानि पहुँचती है। जलाशय में पहुँचने वाली सौर ऊर्जा में कमी होने लगती है। तथा उक्त जल निकाय में घुलित कार्बनिक प्रदूषक बढ़ने से आक्सीजन की कमी होने लगती है। घुलित आक्सीजन की मात्रा कम हो जाने पर जलीय पारिस्थितिक तंत्र के जैविक घटकों का अस्तित्व संकटग्रस्त होने लगता है।

संक्षेप में पारितंत्रों के विनाश से मानव जाति का अस्तित्व सम्भव नहीं है। पारितंत्र अनेक प्रकार की सामाग्री व सेवाएँ मानव को प्रदान करते हैं। अतः प्राकृतिक पारितंत्रों एवं उनके संसाधनों को सुरक्षित व संरक्षित रखना नितांत आवश्यक है।

20.1.6 पर्यावरण का अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय व प्रदेशिक स्तर पर चिंतन

(Contemplation of environment at international, national & state levels)

1.6.1 अन्तराष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणीय चितंन

(अ) मानव पर्यावरण संगोष्ठी (Human environment confrence) : 5–12 जून 1972 को स्वीडन की राजधानी स्टॅाकहोम में सयुंक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सगोंष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें विश्व के 110 देशो ने भाग लेकर पर्यावरण संरक्षण के सम्बन्ध में कई प्रस्ताव पारित किये । इस संगोष्ठी में प्रथम कदम के रूप में **5 जून, 1972** को सयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) की स्थापना की गई। इस स्थापना तिथि को **विश्व पर्यावरण दिवस** के रूप में मनाने की घोषणा की गई। वैश्विक स्तर पर बढती जलवायु परिवर्तन की समस्या के खतरे को ध्यान में रखकर विश्व मौसम संगठन (World Meteorological Organisation, WMO) व संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (United Nations Environment Programme, UNEP) ने मिलकर सन् 1988 में जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल (Intergovernment Panel on Climate Change, IPCC) का गठन किया इसका सचिवालय जेनेवा (स्विटजरलैण्ड) में रखा गया। यह संगठन जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार वैश्विक निकाय के रूप में महती भूमिका निभा रहा है। इस क्षेत्र में दिये गये इसके महत्वपूर्ण योगदान के लिए इसे वर्ष

2007 के नोबल शांति पुरस्कार से सम्मानित करनें की घोषणा की गई। WMO व UNEP के सभी सदस्य देश (करीब 200) IPCC के सदस्य हैं। IPCC का उद्देश्य या मुख्य काम जलवायु परिवर्तन (खासतौर पर मानवजनित) के बढते खतरे, इसके प्रभाव, इसके अनुकूलन व कम करने के उपायों से जुड़े वैज्ञानिक आकलनों को पेश करना है ताकि इन पर आधारित वैज्ञानिक, तकनीकि व आर्थिक– सामाजिक सूचनाओं वाली एक निष्पक्ष, पारदर्शी व गहन आँकलन रिपोर्ट तैयार की जा सके। इससे मानवीय गतिविधियों के कारण तेजी से बदल रही जलवायु के सम्भावित खतरे से **पृथ्वी के बचाने के उपाय ढूढनें में मदद मिलेगी ।**

संयुक्त राष्ट्रफ्रेमवक्र कनवेंशन आन क्लाइमेट चेंज (UNFCCC) एक अतंराष्ट्रीय संधि है जो जलवायु परिवर्तन की हानियों के बचाव के लिए अस्तित्व में आई है। 190 देशों द्वारा हस्तांतरित यह संधि ही क्योटो प्रोटोकाल की जननी है। विश्व स्तर पर होने वाली जलवायु परिवर्तन संबंधी लगभग सभी परिचर्चाओं में IPCC रिपोर्ट को प्रमाणित व विश्वस्तरीय पैमाने के रूप में लिया जाता है। आमतौर पर सभी राष्ट्रीय या अंतराष्ट्रीय प्रतिक्रियाएं संयुक्त राष्ट्र के इस पैनल को अधिकारिक निकाय के रूप में मान्यता देती हैं ।

(ब) रियो सम्मेलन : संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) द्वारा प्रथम वैश्विक मानव सम्मेलन (स्टॉक होम) की 20 वीं वर्षगाँठ पर ब्राजील की राजधानी रियो–डि–जेनेरियो में पृथ्वी शिखर सम्मेलन (Earth summit) का आयोजन 3 से 13 जून, 1992 के दौरान किया गया जिसमें विश्व के 120 राष्ट्रों ने भाग लिया। जिसे पर्यावरण एवं विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन, पृथ्वी सम्मेलन या रियो सम्मेलन का नाम दिया गया। इस सम्मेलन में तीसरी दुनिया के देशों की समृद्ध जैव सम्पदा के संरक्षण के लिये एक समझौता किया गया जिसमें विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों की जैव सम्पदा के संरक्षण के लिये पर्याप्त पूँजी व तकनीक प्रदान करने का प्रावधान रखा गया। इसके अलावा सन् 2005 तक ग्रीन हाउस गैसों (कार्बन डाइआक्साइड, मीथेन आदि) के उत्सर्जन में 20 प्रतिशत कटौती का प्रस्ताव उक्त सम्मेलन में पारित किया गया। सम्मेलन में यह भी निर्णय लिया गया कि पर्यावरण को स्वच्छ रखने तथा उसके संरक्षण पर होने वाले व्यय का अधिकांश हिस्सा विश्व के वही विकसित राष्ट्र उठायेगें जो पर्यावरण की क्षति के लिये अधिक उत्तरदायी हैं। रियो सम्मेलन के कार्यवाही कार्यक्रम को **एजेन्डा – 21** नाम दिया गया था। इस सम्मेलन में विश्व के समस्त राष्ट्रों से यह अपेक्षा की गयी कि वे आर्थिक विकास के उन उपायों को अपनायें जिनसे पर्यावरण को क्षति न पहुँचे।

(स) 'अर्थ प्लस फाइव' सम्मेलन : सन् 1992 में सम्पन्न हुए रियों सम्मेलन में लिये गये निर्णयों की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका के न्यूयार्क शहर में 23 से 27 जून, 1997 के दौरान एक पर्यावरण सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन को 'अर्थ प्लस फाइव' या **'संयुक्त राष्ट्र पृथ्वी शिखर सम्मेलन'** का नाम दिया गया । इस सम्मेलन में हालांकि किसी महत्वपूर्ण समझौते पर आम सहमति न हो सकी हो लेकिन इस सम्मेलन में पर्यावरण को क्षति पहुँचाने वाली हानिकारक गैसों के उत्सर्जन में कटौती तथा पर्यावरण संरक्षण की तकनीकों का विश्व के विभित्र देशों को रियायती दरों पर उपलब्ध कराने जैसे मुद्दों पर व्यापक रूप से बहस हुई।

(द) मान्ट्रीयल सहमति : मान्ट्रीयल प्रोटोकाल ओजोन परत क्षीण करने वाले पदार्थों के बारे में (ओजोन परत के संरक्षण के लिए वीयना सम्मेलन में पारित प्रोटोकाल) एक अन्तराष्ट्रीय संधि है। जो ओजोन पर्त को संरक्षित करने

के लिए चरणबद्ध तरीके से उन पदार्थो का उत्सर्जन रोकने के लिए बनायी गई है जिन्हे ओजोन पर्त को क्षीण करने के लिए उत्तरदायी माना जाता है। इस संधि को हस्ताक्षर के लिए 16 सितम्बर 1987 को खोला गया था और यह 1 जनवरी, 1989 से लागू की गई । इसके बाद इसकी पहली बैठक मई 1989 में हेलसिन्की में हुई। तब से इसमें सात संशोधन हुए हैं : 1990 में लंदन, 1991 में नैरोबी, 1992 में कोपेन हेगेन, 1993 में बैंकॉक,1995 में वियना, 1997 में मान्ट्रीयल और 1999 में बीजिंग में। तब से ऐसा माना जाता है अगर अन्तराष्ट्रीय समझौते का पूरी तरह से पालन हो तो 2050 तक ओजोन पर्त ठीक होने की सम्भावना है।

(य) क्योटो प्रोटोकॉल : जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार मानी जा रही कार्बनडाई आक्साइड, मीथेन, नाइट्रस आक्साइड जैसी ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के स्तर को कम करने के लिए 11 दिसम्बर, 1997 में जापान के क्योटो शहर में एक सहमति पत्र तैयार किया गया। इसमें 6 प्रमुख ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन मे 1990 के स्तर से 5.2% की कमी करने पर अमेरिका सहित 38 विकशित देशों ने सहमति ब्यक्त की थी। इसमें अमेरिका, यूरोपीय संघ, जापान व कनाडा के लिए क्रमशः 7,8,6 और 3% प्रतिशत ग्रीन हाउस गैसो के उत्सर्जन में कमी का कोटा निर्धारित किया गया था। विकाससील देशों के लिए कोई लक्ष्य निर्धारित नहीं किया गया था। इस प्रोटोकाल के अन्तर्गत गैसों में कटौती वर्ष 2008 से लेकर 2012 के मध्य होनी है। यह प्रोटोकाल तब प्रभावी होगा जब विश्व के सम्पूर्ण ग्रीन हाउस गैस का 55 प्रतिशत भाग उत्सर्जित करने वाले देश जिनकी संख्या कम से कम 55 हो इस प्रोटोकाल का अनुमोदन कर दे। अभी तक अमेरिका, जापान तथा आस्ट्रेलिया जैसे अनेक विकसित देशों ने इस पर हस्ताक्षर नही किए हैं। अमेरिका मानता है कि ग्रीन हाउस गैसों को कम करने का प्रयास किया गया तो उसकी अर्थ व्यवस्था प्रभावित होगी। यह अकेले लगभग 22% ग्रीन हाउस गैसो का उत्सर्जन करता है।

(र) जोहांसबर्ग पृथ्वी सम्मेलन : 1992 में रियो डि जेनेरियो में हुये पृथ्वी सम्मेलन में लिए गये निर्णयों की प्रगति समीक्षा के लिये **दूसरे पृथ्वी सम्मेलन** के नाम से चर्चित सतत् विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UN Conference on Sustainable Development) 1-4 **सितम्बर, 2002** के बीच जोहांसबर्ग (दक्षिण अफ्रीका) में सम्पन्न हुआ। विश्व के अब तक के इस सबसे बड़े सम्मेलन में लगभग दो सौ राष्ट्रों के 60 हजार से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। 106 राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्ष भी इसमें शामिल थे। सम्मेलन में अमरीकी प्रतिनिधिमण्डल का नेतृत्व विदेशमंत्री 'कोलिन पावेल ने किया। सम्मेलन में राष्ट्रपति बुश की अनुपस्थिति को प्रतिभागियों ने पर्यावरण सम्बंधी मुद्दो के प्रति उनकी गम्भीरता के अभाव के रूप में लिया। इसमे भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व पूर्व पर्यावरण एवं वन मंत्री **'टी. आर. बालु'** ने किया।

दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रपति घोबो म्बेको ने अपने उद्घाटन के भाषण में कहा कि रियो डि जेनेरियो में हुए पृथ्वी सम्मेलन के 10 वर्ष बाद भी दुनिया निर्धनता, युद्व, संघर्ष व आतंकवाद जैसी चुनौतियो से जूझ रही है। उन्होंने कहा कि दुनिया के लोग सम्मेलन से यह आशा कर रहे है कि एक दशक से उसकी आकाश छूती उम्मीदों को पूरा करने के वायदे को निभाया जाए। पर्यावरण की सुरक्षा हेतु रियो डि जेनेरियो सम्मेलन में स्वीकार किए गये **ऐजेंडा 21** पर भी इस सम्मेलन में बहस छिड़ी रही ।

(ल) कोप–8 सम्मेलन : नयी दिल्ली के विज्ञान भवन में **23, अक्टूबर से 01, नवम्बर 2002** के बीच जलवायु परिर्वतन पर संयुक्त राष्ट्र देशो के सदस्य देशो का आठवाँ सम्मेलन कोप–8 (Cop-8, Conference of Parties) हुआ। 10 दिनो तक लम्बी बहसों और विचार विमर्श में जलवायु परिर्वतन से सबंधित अनेक बिंदुओं पर चर्चा की गई। विकासशील देशो की माँग के अनुरूप तकनीक हस्तांतरण क्षमता विकास और समयानुकूल बदलाव पर केंद्रित जलवायु परिर्वतन एवं सतत विकास संबधी घोषणा पत्र को एक नवम्बर को उक्त सम्मेलन में सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। उधर भारत, चीन और समूह–77 द्वारा क्योटो प्रोटोकाल लागू करने संबंधी विकिसत देशों की माँग लम्बी बहस के बाद भी दस्तावेज में शामिल नहीं की गयी। दिल्ली घोषणा पत्र में अपनी जीत देख रहे अमेरिका यूरोपी संघ और दूसरे विकसित देशो को खुश करने के लिए भारत नें चार बार घोषणा पत्र में बदलाव कर सभी को संतुष्ट करने के लिए कुछ न कुछ शामिल किया गया घोषणा पत्र में भारी दबाव के बावजूद विकासशील देंशो के लिए वातावरण को गर्म करने का वायदा न करके भारत ने एक बडी उपलब्धि हासिल की इसमें यूरोपीय संघ की हार देखी जा रही है। वैसे यूरोपीय संघ ने क्योटो प्रोटोकाल को प्राथमिकता दिलाकर अमेरिका को पटखनी दी। सदस्य देशों के सम्मेलन में पहली बार जलवायु परिवर्तन को सतत विकास से जोड़ा गया।

(व) पीपुल्स वर्ल्ड वाटर फोरम–2004 : पानी का संकट दुनिया के सामने आज चुनौती बनकर खड़ा हुआ है। इसी क्रम में जल समस्याओं के समाधान के लिए 12 जनवरी 2004 को दिल्ली में तीन दिवसीय पीपुल्स वर्ल्ड वाटर फोरम का आयोजन किया गया सम्मेलन में विभिन्न देशो से आये प्रतिनिधियो ने अलग अलग सत्रों में पानी के निजीकरण, समुदायिक भागीदारी एंव स्थानीय लोगो के प्राकृतिक जल अधिकार विषय पर गहन विचार विमर्श किया गया।

पानी के निजी करण के मामले में विश्वबैंक अंर्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष एंव विश्व व्यापार संगठन के जन–विरोधी अभियानो की अलोचना करते हुए यूरोप और अमेरिका के जल विशेषज्ञो ने कहा कि ये संगठन पानी के उत्पादन, वितरण और प्रबंधन को निजी हाथो में सौपने की साजिश रच रहे हैं जबकि स्थानीय समुदाय सक्रिय भागीदारी कर जल प्रबंध को कारगर व ज्ञानोपयोगी बना सकता है। पीपुल्स वर्ल्ड वाटर फोरम के जल योद्धाओं ने एक राय व्यक्त करते हुए कहा कि मुनाफा कमाने वाली कम्पनी के हाथों में जल संसाधनो को सौपना मानव समुदाय के लिय घातक हो एकता है। पीपुल्स वर्ल्ड वाटर फोरम के सयोंजक रिकार्डों पेट्राला, कनाडा की डॉ0 मॉडवार्ले तथा फ्रांस के राष्ट्रपति की पत्नी डॉ0 मित्ता ने स्पष्ट किया की पानी का भविष्य मनुष्य के हाथों में सुरक्षित होना चाहिए। **इसे वस्तु बनाकर बाजार में बेचना सामाजिक अन्याय है।**

(श) पृथ्वी सम्मेलन : प्रथम पृथ्वी सम्मेलन ब्राजील के रियो डी जनेरियो शहर में 3–13 जून 1992 में हुआ था। ठीक इसके 20 वर्ष बाद रियो में ही सन् 2012 में रियो़ +20 के नाम से सम्मेलन हुआ जहॉ यह तय हुआ कि क्योटो प्रोटोकॉल 1997 को सन 2020 तक ही जारी रखेंगे और 2020 के बाद क्या करना है,यह 2015 के पेरिस सम्मेलन में सभी देशो को तय करके रखना होगा। इस सम्मेलन में यह भी तय हुआ कि संधारणीय विकास लक्ष्य जैसी कोई चीज लेकर आएगें। इसके अनुसधांन में सितंम्बर 2015 को संयुक्त राष्ट्र संधारणीय विकास (Sustainable development) सम्मेलन में 17 संधारणीय विकास लक्ष्य अपनाये गये। इन लक्षणों को शुरू करने को

शुरू करने की तिथि 1 जून 2016 तथा प्राप्त करने की अंतिम तिथि सन 2030 रखी गयी है। संधारणीय विकास लक्ष्यों में सहयोगी लक्ष्यों (एसोसिटेड टारगेट) की संख्या **169** है। 1987 में पर्यावरण और विकास पर सुझाव देने हेतु गठित ब्रन्टलैण्ड आयोग ने सबसे पहले संधारणीय विकास की परिभाषा दी थी।

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण के प्रति जन जागरूकता पैदा करने की दृष्टि से पर्यावरण सम्बन्धी कई दिवस मनाए जाते हैं जिनका विवरण सारणी 1.1 पर दिया गया है

सारणी 1.1: पर्यावरण सम्बन्धी दिवस

तिथि	विषय	तिथि	विषय
02 फरवरी	विश्व आर्द्र भूमि दिवस	03 मार्च	विश्व वन्य जीव दिवस
21 मार्च	विश्व वन्य दिवस	22 मार्च	विश्व जल दिवस
18 अप्रैल	विश्व विरासत दिवस	22 अप्रैल	पृथ्वी दिवस
22 मई	अंतर्राष्ट्रीय जैवविविधता दिवस	05 जून	विश्व पर्यावरण दिवस
11 जुलाई	विश्व जनसंख्या दिवस	16 सितंबर	विश्व ओजोन दिवस
28 सितंबर	हरित उपभोक्ता दिवस	03 अक्टूबर	विश्व आवास दिवस
1–7 अक्टूबर	वन्यजीव सप्ताह	04 अक्टूबर	पशु कल्याण दिवस
02 दिसंबर	भोपाल गैस त्रासदी दिवस		

20.1.6.2 राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण पर चिंतन –

(i) अवशोषित कार्बन मात्रा का ज्ञान

(अ) देहरादून स्थित भारतीय सुदूर संवेदन तकनीकी संस्थान (Indian Institute of Remote Sensing, IIRS) ने हल्द्वानी के **लामाचौड** स्थित कार्बन मॉनिटरिंग सेंटर में इटली के अुसिया विश्वविद्यालय के सहयोग से कार्बन डाई–ऑक्साइड फ्लक्स मेजरमेंट टावर स्थापित किया है। इस टावर से यह संभव हो पाएगा कि जंगल वातावरण से कितनी कार्बन डाई आक्साइड सोखते हैं।

(ब) अब तक दुनिया में ऐसे 600 टावर लगाए गए हैं, हालाकि इनमें केवल 400 ही ठीक काम कर रहे हैं।

(स) **लामाचौड़** मे लगे टावर में चार सेंसर लगाए गए हैं जो वातावरण में कार्बन डाइ– ऑक्साइड की मात्रा के बारे में बताएंगे।

(य) अब तक वनों के द्वारा कार्बन अवशोषण व आक्सीजन उत्सर्जन पर देश में जो भी आँकड़े उपलब्ध हैं, वे ज्यादातर अनुमान पर आधारित है।

(र) टावर लगने के बाद उत्सर्जित ऑक्सीजन और अवशोषित कार्बन की मात्रा को पहली बार मापा जा सकेगा।

(ल) भारतीय वन अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् और आईआईआरएस संयुक्त रूप से उच्च हिमालयी क्षेत्रों की वनभूमि में कार्बन की मात्रा को काम कर रहे हैं।

(व) देहरादून स्थित भारतीय वन अनुसंधान (Forest Research Institute,FRI) संस्थान भी आईआईआरएस की मदद से एफआरआई परिसर, पौडी के खिर्सू और चमोली के मंडल गॉव मे ऐसे ही टावर लगाने की योजना बना चुका है।

(ii) देश का पहला सुनामी चेतावनी केंन्द्र

(अ) देश का पहला सुनामी चेतावनी केन्द्र 'नेशनल अर्ली वार्निंग सिस्टम फॉर सुनामी एंड स्टार्म सर्जेज इन द इंडियन ओसियन ' 15 अक्टूबर, 2007 को राष्ट्र को समर्पित किया गया।

(ब) 123 करोड रूपए की लागत से तैयार यह केन्द्र दिसम्बर 2004 में आई सुनामी लहरों से जनमाल की हुई भारी तबाही जैसी घटनाओं की भविष्य में पुनरावृत्ति रोकने में अहम भूमिका निभाएगा।

(स) यह केन्द्र समुद्री क्षेत्र में भूकंम्प आने की स्थिति में बॉटम प्रेशर रिकॉर्डर (बीपीआरएस) के जरिए व्यापक आंकडे इकट्ठा करेगा जिनके आधार पर लोगो को समय से चेतावनी जारी की जा सकेगी।

(द) इस तरह के चार बीपीआरएस बंगाल की खाड़ी में और दो अरब सागर में लगाए गए हैं।

(य) ये सुनामी आने की स्थिति में 13 मिनट के अंदर चेतावनी जारी करने की क्षमता रखते हैं लेकिन कोशिश यह की जा रही कि चेतावनी जारी करने के समय को और घटाया जा सके ताकि जानमाल की कम से कम हानि हो।

(र) अरब सागर और बंगाल की खाडी में ऐसे और बीपीआरएस लगाए जाने की तैयारी है।

(iii) केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण मण्डल (Central Pollution Control board) का गठन : राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण मण्डल का गठन जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम 1974 की धारा 3 के अन्तर्गत किया गया इसके कार्य निम्नलिखित है :

1. जल व वायु प्रदूषण के निरोध व नियंत्रण से सम्बन्धित किसी भी विषय पर केन्द्र सरकार को सलाह देना
2. राज्य प्रदूषण निवारण बोर्डों के कार्यों का समन्वय व विवादों का निपटारा करना।
3. जल व वायु प्रदूषण से सम्बन्धित छानबीन व अनुसधांन के बारे मे राज्य बोर्डों को तकनीकी सहायता प्रदान करना ।
4. जन संचार के माध्यम से पर्यावरणीय सम्बन्धित व्यापक जागरूकता कार्यक्रम चलाना ।
5. जल व वायु प्रदूषण से सम्बन्धित आँकडे प्रदर्शित करना ।
6. नदियो, नालों, व झीलों इत्यादि की स्वच्छता को बढावा देना ।
7. प्रदूषण पैदा करने वालो के खिलाफ दण्ड का प्रावधान करना ।
8. जल व वायु की गुणवत्ता से सम्बन्धित बिषयों पर केन्द्र सरकार को सलाह देना ।
9. जल व वायु से सम्बन्धित बिषयो पर सूचनाओं का संग्रह व प्रसारण का कार्य ।

केन्द्र सरकार ने पर्यावरण के विभिन्न घटकों जैसे जल, वायु , वन्यजीव और पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी विभिन्न अधिनियम पारित किये है जिनके विवरण संक्षेप में निम्नवत हैं :

1. **वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, 1972** : इसके अन्तर्गत राष्ट्रीय पार्कों, अभ्यारणयों की घोषणा व अधिसूचना जारी कर उनकी स्थापना की गई। इन राष्ट्रीय पार्कों, अभियारण्यों में विलुप्त हो रही जीव प्रजातियो का संरक्षण व संवर्धन किया जाता है ।

2. **जल प्रदूषण (निरोध व नियंत्रण) अधिनियम, 1774**: इसके अन्तर्गत जल प्रदूषण के स्तरो का आँकलन करना तथा प्रदूषण फैलाने वालों को दण्ड देना ।

3. **वायु प्रदूषण (निरोध एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981**: इसके अन्तर्गत वायु प्रदूषण स्रोतों, वाहनों, औधोगिक इकाईयों, बिजलीघरों को निधारित सीमा से अधिक CO, SO_2 SPM , Pb, NO_x , वाष्पशील हाइड्राकार्बन व अन्य विषैले पदार्थो को छोडने पर नियंत्रण करना ।

4. **वन संरक्षण अधिनियम,1980 (संशोधित 1988)** के अन्तर्गत वन्य विभाग को आरक्षित वन वनाने तथा आरछित वन का प्रयोग केवल सरकारी कार्य हेतु करनें का प्रावधान किया गया ।

5. **पर्यावरण संरक्षण अधिनियम,1986 : जून 1972** में में स्टाक होम मे आयोजित संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन द्वारा जारी घोषणा पत्र में अन्तर्निहित भावना को अधिनियम बनाकर भारत सरकार द्वारा लागू किया गया। अतः समस्त अधिनियमों को लागू करनें के लिए जनता की भागीदारी व समर्थन जरूरी है। इसके लिए अच्छे प्रशासनों, जागरूक संचार माध्यमों, अत्यधिक सजक नीति निर्माताओ, प्रबुद्ध न्यायपालिकों और प्रशिक्षित तकनीकी विशेषज्ञो का समर्थन भी होना चाहिए जो मिलजुल कार्य कर सके।

1.6.3 प्रादेशिक स्तर पर पर्यावरण पर चिंतन :– जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम, 1974 धारा 4 के अनुसार प्रादेशिक शासन द्वारा **राज्य प्रदूषण निवारण मण्डल** की स्थापना की गई जिसके निम्नलिखित कार्य है:

1. राज्य में नदियों, तालाबों, कुओं इत्यादि के प्रदूषण, नियंत्रण या उपशमन हेतु व्यापक कार्यक्रम की योजना बनाना व उसके निष्पादन को सुनिश्चित करना।

2. जल प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन से सम्बन्धित जानकारी एकत्र करना व उसका प्रसार करना ।

3. मल व व्यावसायिक बहिस्राव की अभिक्रिया के लिए संकर्म एवं संयंत्रों का निरीक्षण करना ।

4. बहिः स्त्रोतों के निवारण के परिणामस्वरूप प्राप्त हो रहे जल की गुणवत्ता के लिए बहिस्राव मानक निर्धारित करना एवं समय–समय पर संशोधन करना।

5. वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण तथा उपशमन के लिए ब्यापक कार्यक्रम की योजना बनाना व उसके निष्पादन को सुनिश्चित करना।

6. वायु प्रदूषण नियंत्रण, निवारण के लिए राज्य सरकार को सलाह देना ।

7. पर्यावरण जागरूकता फैलाने के लिए मास मीडिया का प्रयोग करना व कार्यक्रम करना ।

20.1.7 सतत् विकास के लक्ष्य (Goals of sustainable development)

सन् 2000 में संयुक्त राष्ट्रसंघ के जनरल असेंबली की बैठक हुई। वहॉ उन्होंने सहस्राब्दी विकास लक्ष्य (मिलेनियम डेवलपमेंट गोल) का प्रस्ताव पारित किया। इन लक्ष्यों को 2015 तक प्राप्त कर लेना था। इसमें 8 लक्ष्य थे तथा एसोसिएटेड टारगेट की सख्या 18 थी। अगस्त 2015 में 193 देश निम्नलिखित 17 लक्ष्यों पर सहमत हो गये।

चित्र 1.9: सतत विकास के लक्ष्य

1. पूरे विश्व से गरीबी के सभी रूपों की समाप्ति।
2. भूख की समाप्ति, खाद्य सुरक्षा और बेहतर पोषण और टिकाऊ कृषि को बढावा।
3. सभी आयु के लोगो में स्वास्थ्य सुरक्षा और स्वस्थजीवन को बढावा।
4. समावेशी और न्यायसंगत गुणवत्ता युक्त शिक्षा सुनिश्चित करने के साथ ही सभी को सीखने का अवसर देना।
5. लैंगिक समानता प्राप्त करने के साथ ही महिलाओ और लडकियों को सशक्त करना।
6. सभी के लिए स्वच्छता और पानी के सतत प्रबंधन की उपलब्धता सुनिश्चित करना ।
7. सस्ती विश्वसनीय टिकाऊ और आधुनिक ऊर्जा तक पहुंच सुनिश्चित करना।
8. सभी के लिए निरंतर समावेशी और सतत आर्थिक विकास पूर्ण और उत्पादन रोजगार और बेहतर कार्य को बढ़ावा देना।
9. लचीले व बुनियादी ढांचे समावेशी व सतत औद्योगीकरण को बढ़ावा।
10. देशों के बीच और भीतर असमानता को कम करना ।
11. सुरक्षित, लचीले और टिकाऊ शहर और मानव बस्तियों का निर्माण ।
12. स्थायी खपत और उत्पादन पैटर्न को सुनिश्चित करना ।
13. जलवायु परिर्वतन और उसके प्रभावों से निपटने के लिए तत्काल कार्यवाही करना ।
14. स्थायी सतत विकास के लिए महासागरों और समुद्री संसाधनों का संरक्षण और उपयोग ।

15. सतत उपयोग को बढावा देने वाले स्थलीय पारिस्थितिकीय प्रणालियों, सुरक्षित जंगलों, भूमि क्षरण और जैव विविधता के बढते नुकसान को रोकने का प्रयास करना।
16. सतत विकास के लिए शांतिपूर्ण और समावेशी समितियों को बढावा देने के साथ ही सभी स्तरों पर इन्हें प्रभावी जवाबदेह बनना ताकि सभी के लिए न्याय सुनिश्चित हो सके।
17. सतत विकास के लिए वैश्विक भागीदारी को पुनर्जीवित करने के अतिरिक्त कार्यान्वयन के साधनों को मजबूत बनाना।

हमने जाना

भारतीय सांस्कृतिक परम्परा और चिंतन में पर्यावरण संरक्षण को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। जीव को पंचतत्वों से रचित माना गया है और सभी परिस्थितियों में प्रकृति, पर्यावरण और जीव क्रियाओं के बीच समन्वय को महत्त्व दिया गया है।

पारिस्थितिक तंत्र वातावरण के सभी जैविक एवं अजैविक घटकों के पूर्ण समन्वय से बनी एक संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है।

पारिस्थितिक तंत्र के संरचनात्मक घटकों में जैविक और अजैविक घटक तथा प्रकार्यात्मक घटकों में स्वपोषी एवं विषमपोषी घटक शामिल हैं।

पारिस्थितिक तंत्र को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है– प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र और कृत्रिम पारिस्थितिक तंत्र।

प्राकृतिक संसाधनों में वे समस्त संसाधन आते हैं जो प्रकृति प्रदत्त हैं।

अंतर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण के विकृत होते स्वरूप पर चिंता व्यक्त की जा रही है और सभी स्तरों पर्यावरण संरक्षण के प्रयासों को महत्व दिया जा रहा है।

कठिन शब्दों के अर्थ

पारिस्थितिक तंत्र : पर्यावरण में पाये जाने वाले समस्त जीवधारी अपने आस–पास के वातावरण के साथ क्रिया करते हैं। जैसे– आवास, भोजन आदि के लिये जीवधारियों की निर्भरता, निर्जीव एवं सजीव दोनों पर होती है। अतः जीवित और अजीवित के बीच परस्पर अंतःसंबंध होता है। इस अंतःसंबंध से एक तंत्र बनता है जिसे पारिस्थितिक तंत्र कहते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो पारिस्थितिक तंत्र वातावरण के सभी जैविक एवं अजैविक घटकों के पूर्ण समन्वय से बनी एक संरचनात्मक एवं क्रियात्मक इकाई है।

खाद्य शृंखला : भोजन शृंखलाबद्ध तरीके से पौधों (उत्पादक) से प्राथमिक उपभोक्ता में फिर द्वितीयक एवं तृतीयक उपभोक्ता तक पहुँचता है और अंत में प्राकृतिक अपघटकों द्वारा अपघटित कर दिया जाता है। इसी तरह प्रकृति में जीव एक–दूसरे का भक्षण करते हैं। यदि इन्हें क्रमबद्ध रूप में रखें तो एक शृंखला बनती है। इसे खाद्य शृंखला कहते हैं। दूसरे शब्दों में खाद्य शृंखला वह क्रम है जिसमें एक जीव दूसरे जीव तक ऊर्जा का स्थानान्तरण करता है।

अभ्यास के प्रश्न

1. पारिस्थितिक तंत्र को परिभाषित करते हुये इसकी संरचना और कार्य–प्रणाली पर प्रकाश डालिये।
2. पारिस्थितिक तंत्र के प्रमुख घटकों को सविस्तार समझाइये।
3. पारिस्थितिक तंत्र के कार्यों को लिखिए।
4. प्राकृतिक संसाधनों को परिभाषित करते हुये इनका वर्गीकरण कीजिये।
5. पारिस्थितिक तंत्र और पर्यावरण अंतर संबंधों को स्पष्ट कीजिये।
6. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के प्रयासों की दिशा में अब तक हुई उपलब्धियों को क्रमबद्ध रूप से प्रस्तुत कीजिये।
7. केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण मंडल के गठन के उद्देश्य एवं कार्यों को सविस्तार लिखिये।

आओ करके देखें

अपने आसपास उपलब्ध प्राकृतिक और मानव जनित संसाधनों की सूची बनाइये।

अपने क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण के किन उपायों को आप सफलतापूर्वक लागू कर सकते हैं, उनकी सूची बनाकर एक कार्य योजना तैयार कीजिये।

अपने क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण के उल्लेखनीय प्रयासों की सूची बनाइये। आपके क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में कौन–कौन से गैर सरकारी संगठन कार्यरत हैं।

अपने क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण की दिशा में जागरूकता लाने के लिये एक अभियान की रूपरेखा तैयार कीजिये।

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ सूत्र

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण एम.के. ओझा, बौद्धिक प्रकाशन, दिल्ली

पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी– विकास दिव्य कीर्ति, दृष्टि प्रकाशन, दिल्ली

पर्यावरण विज्ञान– के.एन. तिवारी एवं एस.के. जाधव, आई.के. अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन, दिल्ली

■■■

20.2 : पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण
(Environmental Conservation and Pollution)

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि–

पर्यावरण प्रदूषण करने वाले प्रमुख घटक कौन–कौन से हैं?

पर्यावरण प्रदूषण की नई–नई चुनौतियाँ क्या हैं और उनका सामना कैसे किया जा सकता है?

आधुनिक जीवन पद्धति से पर्यावरण में क्या बदलाव आ रहे हैं? इसमें क्या परिवर्तन किया जा सकता है?

पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित प्रमुख विधिक प्रावधान क्या हैं?

पर्यावरण संरक्षण में स्वयंसेवी संगठनों और स्थानीय निकायों की भूमिका क्या है?

20.2.1 पर्यावरण प्रदूषण के घटक – कारण एवं निवारण
(Components of environmental pollution-causes and abatement)

''पर्यावरण (भूमि, जल, वायु) में हानिकारक पदार्थों का मिलना एवं उनके भौतिक, रासायनिक तथा जैविक लक्षणों में अवांछित परिवर्तनों का होना मृदा/जल/वायु प्रदूषण कहलाता है।''

उदाहरण के लिए पीने योग्य जल में गंदगी का, श्वसनीय वायु में दूषित गैसों (जैसे CO_X, SO_X , NO_X), निलम्बित कणीय पदार्थों (एस0 पी0 एम0) इत्यादि का तथा मृदा में हानिकारक पदार्थों जैसे अम्लीय व क्षारीय पदार्थों तथा भारी धातुओ का अनुमेय सीमा से ज्यादा मात्रा में मिलना आदि जल / वायु / मृदा प्रदूषण को जन्म देता है। उपरोक्त अवांछनीय व प्रदूषण उत्पन्न करने वाले पदार्थ प्रदूषक कहलाते हैं। ये मुख्य रूप से दो प्रकार के होते हैं :

2.1.1 जैव अपघटित प्रदूषक (Biodegradable pollutants) – वे पदार्थ जो आसानी से सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटित कर दिए जाते हैं जैव अपघटित प्रदूषक कहलाते हैं। इसमें प्रायः कार्बनिक प्रदूषक जैसे घरेलू अपशिष्ट (कूड़ा–करकट), मलमूत्र, वाहित मल, कृषि से निकले पदार्थ, पशुओं का गोबर, कागज, जानवरों की हड्डियाँ, चमड़ा, आदि आते है। ये सभी प्रदूषक सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटित कर दिये जाते हैं व अपघटन के उपरान्त हानिकारक नहीं रह जाते।

2.1.2 जैव अनापघटित प्रदूषक (Non-biodegradable pollutants)– वे प्रदूषक जो सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटित नहीं हो सकते जैव अनापघटित प्रदूषक कहलाते है। प्रायः इनमें अकार्बनिक एवं रिफ्रैक्टरी पदार्थ जैसे–प्लास्टिक, पॉलीथिन, पीड़कनाशी, सिरैमिक पदार्थ इत्यादि आते हैं।

2.1.3 वायु प्रदूषण (Airpollution)– ''वायु के भौतिक रासायनिक गुणों में परिवर्तन जो जन्तुओं, वनस्पतियों इत्यादि पर हानिकारक प्रभाव डालता है वायु प्रदूषण कहलाता है।''

(अ) घटक (Components)– CO_x (CO, CO_2) , SO_x (SO_2, SO_3) , NO_x (N_2O, NO, NO_2, NO_3, N_2O_3, N_2O_4, N_2O_5 N_2O_6), निलम्बित कणीय पदार्थ (S.P.M), हाइड्रोकार्बन्स, ओजोन, क्लोरोफ्लुओरो कार्बन्स, भारी धातुएँ इत्यादि। राख या मिटटी के अति महीन कणों को धूल (Dust) कहते हैं जबकि कार्बन के महीन कणों को सूट (Soot) कहते हैं। जब ये दोनों हवा में निलम्बित अवस्था में रहते हैं तो निलम्बित कणीय पदार्थ (S.P.M) कहलाते हैं।

(ब) कारण (Causes)

- धूल भरी आँधियों का आना (धूल के कण)।
- ज्वालामुखियों का फटना (राख, धूल, हानिकारक गैसे इत्यादि)।
- कार्बनिक पदार्थों का अपघटन, पादप एवं प्राणियों की मृत्यु के पश्चात् सूक्ष्म जीवों द्वारा उनके अपघटन से अमोनिया, हाइड्रोजन सल्फाइड आदि गैसों का उत्सर्जन ।
- पौधों द्वारा छोड़े गए परागकण।
- मानव क्रियाकलाप, वातानुकुलित गृह, कल–कारखाना, स्वचालित मोटर–गाड़ियाँ, औद्योगिक इकाईयाँ, फसलों की मडाई से उत्सर्जित निलम्बित कणीय पदार्थ, पेट्रोलियम पदार्थ, उर्वरक, कीटनाशी रसायनों के भण्डारण, नगरीय कचरा ढेर से उत्सर्जित हानिकारक गैसें इत्यादि।

चित्र–2.1: स्वचलित वाहनों द्वारा वायु प्रदूषण

(स) दुष्प्रभाव (Adverse effects) : मनुष्यों, वनस्पतियो एवं पदार्थों पर वायु प्रदूषण के निम्नलिखित प्रभाव देखने मिलते है–

- **कार्बन मोनो आक्साइड के प्रभाव**– सिर दर्द, उल्टी, नींद, सांस लेने में कठिनाई, पेशीय कमजोरी, फेंफड़ों की कोशिकाओं में आक्सीजन के परिवहन क्षमता में कमी, इत्यादि।

- **सल्फरडाइ आक्साइड के प्रभाव**– आँखों में जलन , कफ, खाँसी, सिरदर्द, अस्थमा इत्यादि।
- **नाइट्रोजन आक्साइड के प्रभाव**– फेंफड़ों के ऊतकों में सूजन, फेंफड़ों का कैंसर, आक्सीजन परिवहन क्षमता में कमी आँखों में जलन, प्रतिरोधकता क्षमता में कमी, इत्यादि।
- **निलम्बित कणीय पदार्थों का प्रभाव** : त्वचीय एलर्जी, अस्थमा, सिरदर्द, इत्यादि। पेडों की पत्तियों में जमा होने पर प्रकाश संश्लेषण को प्रभावित करते हैं।

(द) निवारण (Solution)

- सस्ते ईंधन का उपयोग न करें।
- कारखानों व उद्योगों को आवासीय क्षेत्रों से दूर स्थापित किया जाय उनकी चिमनियों को ऊँचा किया जाए, उनमें वेट स्क्रबरर (wetscrubbers) एवं ई0 एस0 पी0 (Electrostatic precipitatars) लगाये जायें,वाहनों का सीमित उपयोग किया जाय ।
- प्राकृतिक गैसों जैसे लिक्विडपेट्रोलियम गैस (LPG) एंव काम्प्रेस्ड नेचुरल गैस (CNG) को ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाय।
- गैर परम्परागत ऊर्जा, स्रोतों का अधिकाधिक उपयोग किया जाय ।
- वाहनों में उत्प्रेरकीय परिवर्तक लगवाए जाय ताकि CO का CO_2 एवं SO_2 का SO_3 में परिर्वतन हो सके ।
- वृक्षारोपण किया जाय ।
- वाहनों के धुआं निकालने वाले पाइप के मुँह पर फिल्टर या आफ्टर बर्नर का उपयोग किया जाये ।

20.2.1.4 जल प्रदूषण (Water Pollution)

जल जीवों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण पदार्थ है एवं यह जैवमंडल में पोषक तत्वों के संचरण एवं चक्रण में सहायक है। औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं मानव जनसख्यां में तीव्र वृद्धि के कारण जल की मांग में अति वृद्धि हुयी है एवं गुणवत्ता में भारी गिरावट आयी है। यद्यपि जल में स्वयं शुद्धिकरण की क्षमता होती है। परन्तु जब प्रदूषकों का जल में सान्द्रण स्वयं शुद्धिकरण की क्षमता से अधिक हो जाता है तो जल प्रदूषित हो जाता है। ज्ञात होकि भूमण्डल में कुल उपलब्ध जल का 97.4% समुद्रों में लवणीय जल के रूप में एवं 2% ध्रुवों पर बर्फ के रूप में कैद है। शेष केवल 0.59% भूजल के रूप में एवं 0.01% सतही जल के रूप में मनुष्य के उपयोग के लिए उपलब्ध है–

''जल के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में परिवर्तन जो कि मनुष्य एवं जीव जगत पर हानिकारक प्रभाव डालता है, जलीय प्रदूषण कहलाता है।''

वह जल जिसे स्वास्थ्य संबधी दुष्प्रभावों के बिना उपयोग में लाया जा सके **पेय जल** कहते हैं।

चित्र 2.2 : जल प्रदूषण

(अ) घटक (Components)

कार्बनिक पदार्थ जैसे पेपर, मल–मूत्र, जैव अपशिष्ट पदार्थ, कृषि अपशिष्ट इत्यादि एवं **अकार्बनिक पदार्थ जैसे** बाइकार्बोनेट, सल्फेट, फास्फेट, नाइट्रेट, क्लोराइड, भारी धातुएँ ।

(ब) कारण (Causes)

- जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण, औद्योगिक विकास, परिवर्तित जीवन शैली (संसाधनों का दोहन) एवं औद्योगिक अपशिष्ट जल को उपचारित किए बिना शुद्ध जल निकायों में छोड़ा जाना।
- उर्वरक व पीडकनाशी का अत्यधिक उपयोग।
- अनेक पोषक पदार्थों (नाइट्रोजन व फास्फोरस की अधिकता रखने वाले) को शुद्ध जल स्रोतों में छोड़ा जाना।
- रेडियोधर्मी पदार्थ कचरे का उचित निस्तारण न किया जाना।

(स) दुष्प्रभाव (Adverse effects)

- **जन्तुओं पर**– जैव रासायनिक आक्सीजन माँग (BOD) ज्यादा होने से जलीय पारितन्त्र बाधित होता है, फलत: जलीय जन्तुओं के अण्डे, लार्वा जैसी अवस्थायें नष्ट हों जाती हैं। इसी प्रकार घुलित आक्सीजन (DO) की मात्रा कम होने से जलीय प्राणियों का जीवन में खतरे आ जाता है फलतः उनकी मृत्यु तक हो जाती है।
- **वनस्पतियों पर**– प्रदूषित जलाशयों में सुपोषण (eutrophication) के चलते एलगल ब्लूम बढ़ जाता है जिससे सूर्य के प्रकाश का प्रवेश कम हो जाता है। फलतः प्रकाश संश्लेषण की दर में कमी आ जाती है। इससे जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा में कमी आ जाती है। अन्त में शैवालों के नष्ट होने पर जल

निकाय में जैवभार (Bio mass) बढ़ जाता है एवं जैव भार का अपघटन होने पर जल निकाय की घुलित आक्सीजन में पुनः और कमी आ जाती है।

- **मानव पर**– प्रदूषित जल के सेवन मानव में विभिन्न तरह की बीमारियाँ जैसे टायफाइड, हैजा, डायरिया, पेचिश, पीलिया, हिपेटाइटिस आदि उत्पन्न होती हैं। साथ ही गुर्दे, यकृत, फेफड़े, मस्तिष्क आदि पर घातक प्रभाव पडता है।

(द) निवारण (Abatement)

1. वाहित मल (Sewage), औद्योगिक अपशिष्ट जल इत्यादि को जल स्त्रोतों में प्रवाहित करने के पहले उपचारित किया जाय।
2. व्यर्थ पदार्थों जैसे कागज, प्लास्टिक, सड़े फल, सब्जियाँ, भोजन आदि को खुले में नहीं फेंका जाए।
3. शासन द्वारा निर्धारित जल प्रदूषण नियंत्रण कानूनों का कठोरता से पालन करवाया जाए।
4. वनों के विनाश को रोका जाए तथा वृक्षारोपण किया जाए ।
5. दैनिक जीवन में जल का अपव्यय रोका जाए।
6. नदियों में बाढ़ के प्रकोप को रोकने के लिए नदी के दोनों ओर कुओं का निर्माण कर उनको पक्की गहरी नालियों के द्वारा नदी से जोड़ा जाय।
7. वर्षा जल संग्रहण तन्त्र (Rain water harvesting system) स्थापित किए जायें ।
8. प्राचीन जल संरक्षण साधनों जब तालाबों, बावडियों इत्यादि का जीर्णोद्धार कर उन्हे पुनः उपयोग में लाया जाय इससे जल सम्भरण में भी वृद्धि होगी।

मध्यप्रदेश के देवास जिला प्रशासन से सभी उन घरों में जिनमें हैंडपंप हैं, रेनवाटर हार्वेस्टिंग सिस्टम लागू करने के आदेश जारी कर दिए है। ऐसे ही नियम संपूर्ण मध्यप्रदेश के लिये लागू किये जा रहे हैं।

20.2.1.5 मृदा प्रदूषण (Soil Pollution) : जनसंख्या वृद्धि ने प्रत्येक प्राकृतिक संसाधन को प्रभावित किया है। आवास के रूप में मकानों का निर्माण,उद्योग धंधों के लिये बडे पैमाने पर भवनों का निर्माण हो रहा है। कृषि भूमि में उर्वरक व कीटनाशी रसायनों का छिडकाव हो रहा है। भूमि पर लगातार घातक रसायन, व्यर्थ के पदार्थ, कूड़ा इत्यादि सभी डाले जा रहे हैं। ये सभी विषाक्त पदार्थ मिट्टी को दूषित कर रहे हैं।

‘‘मृदा में अवांछित पदार्थों (उर्वरक, पीड़कनाशी, औद्योगिक कचरा इत्यादि) के मिलने से उसके भौतिक व रासायनिक गुणों का परिवर्तित होना **मृदा प्रदूषण** कहलाता है।’’

अ. घटक (Components) – अम्लीय व क्षारीय, काबेनिक व अकार्बनिक पदार्थ, भारी धातुएं इत्यादि

ब. कारण (Causes)

- नगर वाहित मल एंव घरेलू अपशिष्ट जल औद्योगिक इकाइयों से निकले अपशिष्ट जल व कचरे को अनुपचारित दशा में भूमि पर छोडा जाना ।
- कृषि रसायनों (उर्वरकों व पीडकनाशियों) का अत्यधिक उपयोग।
- खनन के कारण ऊपरी सतह की वनस्पतियों का कम हो जाना व भूमि का अपरदन होना।
- आँधी, तूफान, तेज हवा, बाढ इत्यादि का आना एवं अंधाधुंध वनों का कटाव।

स. दुष्प्रभाव (Adverse effects)

- भूमि की उर्वरा शक्ति का ह्रास।
- फसल उत्पादन का प्रभावित होना।
- मृदा में उपस्थित हानिकारक पदार्थों (कीटनाशक,उर्वरकों आदि) का आहार श्रृंखला में प्रवेश कर मानव में पहुँचकर स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाना।
- स्थलीय परितन्त्र का असन्तुलित होना।

द. निवारण (Abatement)

- भू संरक्षण द्वारा ।
- वृक्षारोपण द्वारा ।
- घरेलू व उद्योगों से निकले अपशिष्ट जल को उपचारित कर भूमि पर छोडकर।
- फसल चक्र का उपयोग करके।
- ढलानों पर सीढीनुमा तरीके से खेती करके
- रासायनिक उर्वरकों के स्थान परकार्बनिक खादों का उपयोग करके।
- पीडकनाशियों के उपयोग के बजाय समेकित पीड़क प्रबन्धन विधियां लागू करके एवं पीड़कनाशियों का सीमित उपयोग करके।
- कार्बनिक खेती करके ।

2. ध्वनि प्रदूषण (Noise pollution)

कारण (Causes) : ''विभिन्न प्रकार की अवांछनीय तीव्र ध्वनियों (**60 डेसीबल से ज्यादा** की ध्वनि) के द्वारा पर्यावरण में उत्पन्न अशांति ध्वनि प्रदूषण कहलाता है।'' वाहनों से निकलनें वाली आवाज,कल कारखानों का शोर, प्रचार प्रसार के लिये उपयोग में लाये जाने वाले लाऊडस्पीकर्स से निकली ध्वनियाँ इत्यादि। ध्वनि की इकाई डेसीबल है। कुछ क्रियाओ की ध्वनि का स्तर सारणी 2.1 में दिखाया गया है।

सारणी 2.1: विभिन्न ध्वनियों का स्तर

क्रियाएँ	ध्वनि स्तर (डेसी)	क्रियाएँ	ध्वनि स्तर (डेसी)
सामान्य वार्तालाप	35–60	घडी का चलना	30
टेलीफोन की घंटी	70	रेलगाडी की सीटी	110
बिजली कड़कना	120	पटाखे, हवाई जहाज की ध्वनि	120

स. दुष्प्रभाव (Adverse impacts) :

- श्रव्य क्षमता कम करता है, यहाँ तक की व्यक्ति बहरा हो सकता है।
- सिरदर्द एवं चिड़चिड़ापन होने लगता है।
- गर्भस्थ शिशु पर कुप्रभाव डालता है एवं गर्भपात की संभावना बढ़ जाती है।

द. निवारण (Abatement) : शोर पर 3 प्रकार से नियंत्रण किया जा सकता हैः

(i) ध्वनि स्त्रोत को नियंत्रित करके–

- लाउडस्पीकर, रेडियो, टेली– विजन, स्टीरियो को धीमी आवाज में बजाना ।
- उद्योगों कारखानों को शहर से दूर स्थापित करना ।
- कारखानों के कलपुर्जों का उचित रख रखाव।
- वाहनों में गुणवता वाले ईधन का उपयोग करना।
- साइलेंसर का प्रयोग करना।

(ii) ध्वनि के मार्ग में अवरोध उत्पन्न करके–

- सडकों के किनारे वृक्षोरोपण किया जाना।
- ध्वनि के मार्ग में ध्वनि अवशोषी पदार्थों का उपयोग किया जाना।

(ii) श्रवण इन्द्रियों की उचित सुरक्षा करके–

- तीव्र ध्वनि से बचने के लिये हाथ की अँगुलियों से कान को बंदकर लेना चाहिए।
- कानों में रूई लगाना चाहिए।
- तेज ध्वनि वाले स्थान से दूर चले जाना चाहिए।

20.2.2 पर्यावरण प्रदूषण की उभरती चुनौतियाँ (Emerging challenges of enviromental pollution)

2.2.1 (i) जैव अपघटनीय कचरा (Biodegradable waste) : इसमें कार्बनिक प्रकृति का कचरा आता है जो कि सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटित कर दिया जाता है। इसलिए इसे नष्ट होने वाला कचरा भी कहते हैं। अपघटन के पश्चात् यह कचरा हानिकारक नहीं होता और प्रायः खाद के रूप में प्रयोग कर लिया जाता है अर्थात इसका

प्रबन्धन आसान व लाभप्रद है। जैसे रसोई का कचरा, पेड़–पौधों की पत्तियाँ टहनियाँ कृषि फसलों का अवशेष, मानव व पशु का मल मूत्र, कागज, गत्ते, इत्यादि। गोबर गैस वर्मीकम्पोस्टिगं आदि का निर्माण उक्त कचरे से ही होता है। वर्मीकम्पोस्टिगं में केचुओं तथा सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा कम्पोस्टिंग की जाती है यह तकनीक अत्यंत सरल तथा लाभकारी हैं। इस विधि से खाद तैयार करने में केवल 25–30 दिन का समय लगता है।

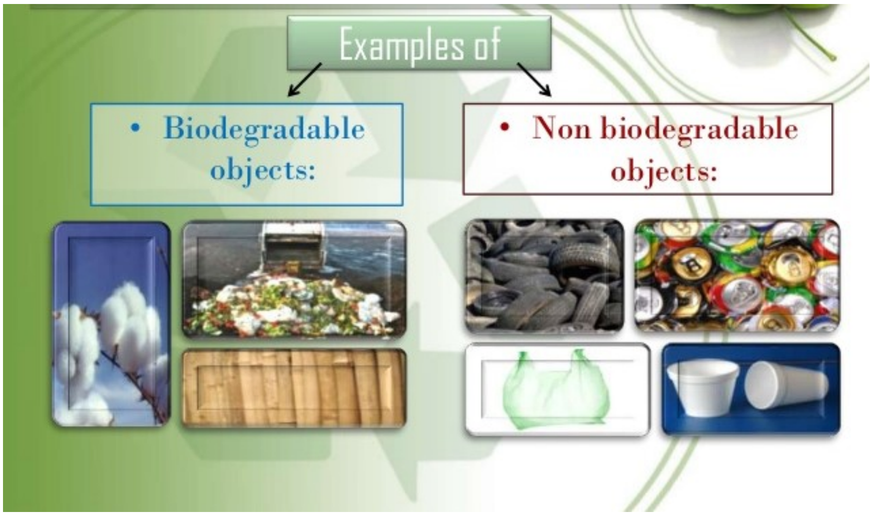

चित्र–2.3 : जैव अपघटनीय एवं जैव अनपघटनीय कचरा

(ii) जैव अनपघटनीय कचरा (Non biodegredeble waste) : इसमें अकार्बनिक व दुर्गलनीय (Refractory) प्रकृति का कचरा आता है जिसका सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटन नहीं हो सकता। जैसे अम्ल, क्षार, प्लास्टिक, रबर, पालीथीन, पी0वी0सी0, कॉंच, टेराकोटा, इत्यादि। इस कचरे का प्रबन्धन कठिन होता है हालांकि इस कचरे में कुछ भाग ऐसा होता है जिसे पुनर्चक्रण (Recycling) के माध्यम से पुर्नउपयोगी दशा में ले आते हैं। शेष बचे कचरे की Recycling न होने पर उसका प्रबन्धन भूभरण (Land filling) के माध्यम से करते हैं।

20.2.2.2 आधुनिक कृषि पद्धति (Modern agriculture system) : आधुनिक कृषि प़द्धति में कृषि उपकरणों, रसायनों, कीटनाशक तथा खाद का प्रयोग शामिल है। हरित क्रान्ति ने विश्व की कृषि पद्धति को पूर्णतः परिवर्तित कर उत्पादकता को कई गुना बढा दिया है। इसके पीछे चमत्कारिक बीज, कीटनाशी, सिंचाई तथा संश्लेषित नाइट्रोजन खाद का महत्वपूर्ण योगदान है जिसने विश्व की बढती आबादी को पर्याप्त भोजन प्रदान किया। इसी प्रकार ऊर्ध्वाधर खेती, कार्बनिक खेती, मिश्रित खेती, निर्वहनीय खेती आदि का योगदान अति महत्वपूर्ण व लाभदायक सिद्ध हुई है।

संकरित बीज–19 वीं शताब्दी के वैज्ञानिकों ने मक्का गेहूँ और चावल के ऐसे बीज विकसित किये जो उच्च पैदावार प्रदान करते हैं। पर्याप्त, सिंचाई, कीटनाशक व खाद की कमीं होने के बावजूद F_1 संकरित बीजों ने किसानों को अधिक पैदावार दी।

फसल चक्रीकरण : मिट्‌टी में पोषक तत्वों (खनिजों) की मात्रा बनाये रखने के लिए फसलो को बदल –बदल कर बोया जाता है जो पोषण का सतुंलन बनाये रखता है। फसल चक्रीकरण मिट्‌टी की संरचना उर्वरता को बढाता है, और पोषण के विघटन को कम करता है, जिससे लगातार उपज प्राप्त होती है उदाहरणार्थ लेग्यूमेनेसी (दलहनी) फसलों को प्रत्येक दूसरे वर्ष बोने से मिट्‌टी में नाइट्रोजन की कमी नहीं हो पाती जो अन्य फसलों के लिए लाभप्रद है।

सिंचाई : फसलों की सिचाई में 70% शुद्व जल खर्च होता है, परम्परागत बाढ़कृत सिचाई से खेत में अत्यधिक पानी भर जाता था जिससे मृदा अपरदन तथा जल की हानि होती थी, किन्तु आधुनिक सिंचाई पद्धति जैसे टपकन सिंचाई तथा ऊर्ध्वस्थ सिंचाई में जल कम लगता है एवं पौधों की जड़ों को कम से कम हानि पहुँचाती है। फलतः पैदावार बढ़ जाती है।

कीटनाशक : फसलों को कीटो के द्वारा अत्यधिक मात्रा में हानि पहॅुच रही थी। जिसके लिए वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न कीटनाशक रसायन ईजाद किए गये , जिनका सतुंलित उपयोग फसलो को रोगों से बचाता है। फलतः पैदावार की मात्रा बढ़ जाती है।

आधुनिक उपकरण : ट्रैक्टर, हार्वेस्टर, थ्रेसर आदि नें कृषि के कार्य को आसान तथा समय की बचत कराई है, उपकरणों का विकास कृषकों के लिए वरदान साबित हुआ है आज विश्व के बाजारों में जोतनें, बोने, काटने, मारने, दवा छिडकने तथा अन्य कृषि कार्यों में उपकरण महती भूमिका अदा करते हैं ।

20.2.2.3 उद्योग तथा वाहन (Industries & vehicles)

(अ) उद्योग: मानव की बढती आवश्यकताओं ने औद्योगीकरण की दर को चरम स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया है। औद्योगीकरण के फलस्वरूप जीवाश्म ईंधनो, कोयला, पेट्रोल, आदि का उपयोग काफी बढ़ गया है। इस समय हम प्रतिवर्ष लगभग 4 अरब टन जीवाश्म ईंधन जलाते हैं। इसकी खपत में लगभग 4 प्रतिशत की वृद्धि हो रही है। उद्योग से निकलनें वाले वायु प्रदूषक उघोगो के प्रकार व उनके द्वारा उपयोग लाये जा रहे कच्चे माल इत्यादि पर निर्भर करते हैं। उद्योगों द्वारा लगभग 36 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड मुक्त की जाती है। कुछ उद्योग व उनके प्रदूषक इस प्रकार हैं।

(i) **उर्वरक उघोग**– इनसे प्रायः निलम्बित कणीय पदार्थ (एस0 पी0एम0) उत्पन्न होते हैं जो कि उर्वरक बनाने में लगने वाले कच्चे माल को पीसने, मिलाने, सुखाने, ढोते समय बोरों में भरने आदि में उत्पन्न होते हैं।

उदाहरणार्थ, यूरिया बनाने वाले कारखानें से उत्सर्जित धूल के कणों में यूरिया व अमोनियम सल्फेट बनाने वाले कारखानों से गंधक, जिप्सम आदि के कण उत्सर्जित होते हैं।

(ii) सीमेंट उद्योग– सीमेंट कारखानों से मुख्यतः निलम्बित कणीय पदार्थ (एस0 पी0 एम0) के रूप में कैल्सियम,एल्यूमिनियम, सिल्कान के आक्साइड मिलते हैं जो कि अपर्दन के फलस्वरूप पेड़ पौधों की पत्तियों पर जमा होकर उनके वाष्पोत्सर्जन व प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को बाधित कर पौधों की बृद्धि को रोक देते हैं।

(iii) खनिज अम्ल उद्योग– खनिज अम्लो जैसे गंधक का अम्ल (H_2SO_4), शोरे का अम्ल (HNO_3), नमक का अम्ल (HCl) व फास्फोरिक अम्ल (H_3PO_4) के निर्माण के दौरान क्रमबद्ध विभिन्न प्रदूषक पदार्थ जैसे SO_X, NO_x, क्लोरीन व फास्फोरसपेण्टाआक्साइड (P_2O_5) वातावरण में मुक्त होता है।

(iv) इस्पात उद्योग– इस उघोग से धुआँ व धूल के कणो के अतिरिक्त कार्बन डाइआक्साइड कार्बन मोनोआक्साइड गैस व ठोस कणों का उत्सर्जन होता है जो वातावरण में जाकर हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

(v) औद्योगिक बहिःस्त्राव – अधिकांश उत्पादन संयंत्र जल के उपयोग पर निर्भर करते हैं तथा उत्पादन प्रक्रिया के अंत में उघोगो से निकलने वाला बहिःस्त्राव हानिकारक अपशिष्ट पदार्थों से युक्त रहता है। जिनका निस्तारण अति आवश्यक होता है। सदैव से उद्योगों को जल की आपूर्ति तथा अपशिष्ट पदार्थों के सुगम समापन के उद्‌देश्य से अधिकांशतः बडी नदियों या जलाशयों किनारे स्थापित किया जाता रहा है। प्रारंभ में तो इनके दुष्प्रभाव दिखाई नहीं देते, पर जैसे–जैसे औद्योगिकीकरण बढता है,उक्त जलाशय औद्योगिक अपशिष्टों की मात्रा में वृद्धि के कारण अधिकाधिक प्रदूषित होते जाते हैं। यही कारण है कि औद्योगिक रूप से विकसित देशों के अधिकांश बड़े जल स्रोत गंभीर रूप से प्रदूषित होकर नष्ट होने की स्थिति में पहुँचते हैं।

अधिकांश उद्योगों कें बहिस्त्राव में मुख्यतः अनेक धात्विक तत्व तथा अनेक प्रकार के अम्ल, क्षार, लवण, तेल, वसा अन्य विषैले रासायनिक पदार्थ इत्यादि उपस्थित रहते हैं जिनसे गंभीर जल प्रदूषण की आशंका रहती है। विभिन्न धतुओं के खनन के पश्चात विवृत खादानों से वर्षाकाल में जल के साथ बहकर बहुत सी खनिज मृदा भी जलाशयों में जा मिलती है। फलतः उनके जल के भौतिक रासायनिक तथा अभिलक्षणों में प्रदूषणकारी परिवर्तन ला देते हैं।

(Vi) ताप–विद्युत घर– भारत में विघुत उत्पादन मुख्य रूप से कोयले को जलाकर किया जाता है। यह वायु प्रदूषक का एक स्त्रोत है। ताप विद्युत गृहों में कोयले को जलाने पर कार्बन डाईऑक्साइड, सल्फर के

ऑक्साइड व अन्य गैसें उत्पन्न होती है। साथ ही निलम्बित कणीय पदार्थ के रूप में उडन राख (Fly ash) उत्पन्न होती है जो कि एक हानिकारक प्रदूषक है।

(ब) वाहन (Vehicles) : ये परिवहन के साधन हैं। इनमें वायुयान जेट विमान, जल–जहाज, रेलगाड़ी, ट्रक, बस,कार,तिपहिया तथा दुपहिया वाहन आदि आते हैं। ये सभी पेट्रोल या डीजल को ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं जिनके जलने पर कार्बन के सूक्ष्म कण, हाइड्रोकार्बन, कार्बन, नाईट्रोजन व सल्फर के आक्साइड उत्पन्न होते हैं जो कि हानिकारक प्रदूषक हैं।

चित्र–2.4: अप्रत्याशित वाहन एवं उनसे उत्पन्न प्रदूषण

भारत में सडकों पर लगभग लगभग 2.8 मिलियन वाहन चलते हैं जिसमें से लगभग 65 प्रतिशत पेट्रोल चालित दुपहिया वाहन है वातावरण में पाये जाने वाले सैकड़ों टन प्रदूषकों में से 50 प्रतिशत वाहनों द्वारा उत्पन्न किये जाते हैं । उसमें कार्बन मोनोआक्साइड होते हैं जो मुख्य रूप से दुपहिया और तिपहिया वाहनों से उत्पन्न होते हैं। उक्त प्रदूषकों से विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ, हरित गृह प्रभाव, वैश्विक ऊष्णता आदि उत्पन्न हो रही हैं।

20.2.4. पारम्परिक उर्जा स्रोत (Traditional energy sources)

इन स्रोतों का उपयोग हम पीढियों से ऊर्जा के लिए कर रहे हैं इनमें – लकडी, कोयला, पेट्रोलियम पदार्थ (खनिज तेल), प्राकृतिक गैस इत्यादि आते हैं। उक्त पदार्थों का निर्माण करोड़ो वर्ष पूर्व ऊष्मा व संकुचन के दाब के कारण पृथ्वी में भूस्खलन, भूकम्प, लावा इत्यादि के कारण दबे जन्तुओं व पौधों से हुआ था। फलतः इन्हें जीवाश्म ईंधन भी कहते हैं। इनके भण्डार सीमित होने से भविष्य में इनकी उपलब्धता सन्देहास्पद है। वैज्ञानिक अनुमानों के अनुसार आगामी 200,60 एवं 40 वर्षों में क्रमशः कोयला, प्राकृतिक तेल एवं प्राकृतिक गैस के भण्डार समाप्त हो जायेंगे।

20.2.5. आधुनिक जीवन पद्धति एवं पर्यावरण क्षरण (Modern life style & enviromental degradation)

मानव की आधुनिक जीवन पद्धति जैसे संसाधनों के उपयोग के बजाय दोहन की प्रवृत्ति, उपभोक्तावादी नीति, आरामदेह एवं अनियंत्रित दिनचर्या, स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति सहजीविता के स्थान पर परजीविता का दृष्टिकोण, आत्मनिर्भरता के बजाय परनिर्भरता की प्रकृति मानव को मानवीय गुणों से दूर करती जा रही है। पुनश्च मशीनीकरण एवं तरह तरह के घरेलु उपकरणों जैसे वातानुकुलन संयंत्र शीतलन संयंत्र, दूरदर्शन, दूरभाष इत्यादि ने मानव को एक यंत्रवत पुतला बना दिया है। मानव यह भूल ही गया है कि वह और पर्यावरण प्रकृति के दो अविभाज्य एवं परस्पर पूरक घटक है।अर्थात पर्यावरण के विकास में ही हमारा विकास है एवं पर्यावरण की स्वस्थता एवं संमृद्धता ही हमारी स्वस्थता एवं संमृद्धता है। हमे सतत् विकास हेतु प्राकृतिक और सांस्कृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं संवर्धन करना होगा ताकि अगामी पीढियों के पास भी उक्त संसाधन मौजूद रहें। प्रत्येक मानव अपने पर्यावरण की गुणवत्ता का संरक्षण एवं परिवर्धन सतत् करता रहे ताकि हमको मिली प्राकृतिक विरासत अगामी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रह सके। पर्यावरण क्षरण रोकने हेतु हमको पर्यावरण हितैषी पदार्थों, तकनीकों, दिनचर्या एवं जीवनशैली को अपनाना होगा।संक्षेप में उक्त दृष्टिकोण से भरी जीवन पद्धति से पर्यावरण का विकास होगा तथा हम व हमारी अगामी पीढी खुशहाल रह सकगी अन्यथा कि दशा मे पर्यावरण क्षरण एवं हमारा पतन सुनिश्चित होगा।

(i) **कोयला**– यह पारम्परिक ऊर्जा का प्रमुख स्त्रोत है। ज्ञात हो कि 1950–51 के दौरान कोयले का उत्पादन 32.8 मिलियन टन था जो कि 1960–61 तक लगभग इतना ही रहा। 1971–72, 1997–98 , 1999–2000, 2000–01 एवं 2001–02 में यह उत्पादन बढकर क्रमशः 72.7, 295.93, 300.09, 309.63 एवं 322.63 मिलियन टन हो गया । वर्तमान में भारत का कोयला उत्पादन में विश्व में पांचवा स्थान है।

इसी प्रकार लिग्नाइट जो कि कोयले का ही एक प्रकार है एवं इसे भूरा कोयला कहा जाता है। 1970–71 में इसका उत्पादन 3.39 मिलियन टन था। 1980 –81,1984–85,1994–95, 1997–98, 1998–99, 1999–2000, 2000–01, एवं 2001–02 में इसका उत्पादन क्रमशः 5.11,7.80,19.3, 23.05,23.42,12.5,18.17 एवं 18.37 मिलियन टन रहा।

चित्र 2.5: पारम्परिक उर्जा स्त्रोत

(ii) पेट्रोलियम—यह काफी ज्यादा मात्रा में पृथ्वी की सतह में पाया जाता है। ऊर्जा स्रोत होने के साथ – साथ इसका उपयोग दवाओं ,उर्वरक ,खाद्य सामग्री, प्लास्टिक, भवन निर्माण, पेन्ट, कपड़ा उद्योग इत्यादि में किया जाता है 1950—51,1990—91,1991—92, 1992—93,1993—94, में इसका उत्पादन क्रमशः 0.25,33.0,30.3,27.0 एवं 27.0 मिलियन टन था। यह उत्पादन 1994—95,1998—99,2000—01 एवं 2001—02 में बढकर क्रमशः 32.24 ,32. 72, 32.46एवं 32.03 मिलियन मीट्रिक टन था ।

(iii) प्राकृतिक गैस— इसके द्वारा न्यूनतम प्रदूषण होने से इसे हरा ईंधन भी कहते है, इसका उत्पादन 1993—94,1994—95, 1996—97,1997—98, 1998—99,1999—2000,2000—01,एवं 2001—02 में क्रमशः 18.3, 19.4, 27.8, 26.4, 27.4, 28.5, 29.5, एवं 29.6 विलियन क्यूबिक मी0 था।

समाधान— ऊर्जा की पारम्परिक स्त्रोतों की सीमाओं को ध्यान में रखते हुए हमको ऊर्जा के नवीन स्रोतो पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा।

ये नवीन स्रोत सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, सागरीय ज्वालामुखी ऊर्जा,परमाणु ऊर्जा,जल विद्युत ऊर्जा इत्यादि होंगे ।

20.2.3 प्रदूषण एवं पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित अधिनियम

(Acts related to pollution & environmental conservation)

इसमे मुख्य रूप से 5 नियम आते हैं जो कि निम्नलिखित हैं –

20.2.31 पर्यावरण संरक्षण अधिनियम 1986 (Environmental conservation act -1986)

पर्यावरण के विविध आयामों को कानून की परिधि में **ब्रिटिश काल** से ही रखा जाता रहा है। यद्यपि ब्रिटिश शासन के समय **इंडियन पैनल कोड** 1860 की धरा 268, 290, 426, 430, 431 तथा 432 में पर्यावरणीय तथ्यों का विवरण है तथा धारा 277 जल प्रदूषण और 278 वायू–प्रदूषण से सम्बन्धित है। इसी काल में **मोटरवाहन एक्ट, 1938, इंडियन फोरेस्ट एक्ट, 1927** में बना । भारत दुनिया के उन गिने चुने देशों में सम्मिलित है जिनके संविधान में देश की समृद्ध वन्य सम्पदा का स्पष्ट विवरण है। सविंधान के **अनुच्छेद 48 ए** में राज्य से अपेक्षा की गयी है कि वह पर्यावरण के संरक्षण और सुधार तथा देश के वनो व वन्य जीवो के संरक्षण का उत्तरदायित्व निभाएगा । संविधान के **अनुच्छेद 51 ए** (जी) में प्रत्येक नागरिक से यह भी अपेक्षा की गयी है कि वह वन झीलो नदियों और वन्य जीवों सहित सम्पूर्ण प्राकृतिक पर्यावरण को अपना बुनियादी कर्तव्य समझकर रक्षा करेगा और जीवित प्राणियों के प्रति दया भाव रखेगा। उक्त विषय के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रावधन हैं।

(i) पर्यावरण प्रदूषणके निवारण, नियंत्रण और उपशमन के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बनाना और उसको निष्पादित करना।

(ii) पर्यावरण प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण और उपशमन से संबंधित निर्देशिकाएं संहिताओं या पथ प्रदर्शिकाएँ तैयार करना।

(iii) पर्यावरण के विभिन्न आयामों के सम्बन्ध में उसकी गुणवत्ता के लिए मानक अधिकथित करना।

(iv) विभिन्न स्रोतों से पर्यावरण प्रदूषकों के उत्सर्जन या निस्तारण के मानक अधिकथित करना।

(v) उन क्षेत्रों का निर्बन्धन जिनमें कोई उद्योग संक्रियाएं या प्रसंस्करण या किसी वर्ग के उद्योग संक्रियाएं या प्रसंस्करण नही चलाये जायेंगे या कुछ रक्षोपायों के अधीन रहते हुए चलाये जाएगें।

(vi) पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी दुर्घटनाओं के निवारण के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय अधिकथित करना जिनसे पर्यावरण प्रदूषण हो सकता है और ऐसी दुर्घटनाओं के लिए उपचारी उपाय अधिकथित करना।

(vii) परिसंकटमय घातक पदार्थों को उठाने और रखने के लिए प्रक्रिया और रक्षोपाय अधिकथित करना।

(viii) ऐसी विनिर्माण प्रक्रियाओं, सामग्री और पदार्थों की परीक्षा जिनसे पर्यावरण प्रदूषक होने की संभावना है।

(ix) पर्यावरण प्रदूषक की समस्याओं के सम्बन्ध में अन्वेषण और अनुसन्धान करना और प्रयोजित करना।

(x) किसी परिसर, संयंत्र, उपस्क, मशीनरी, विनिर्माण या अन्य प्रक्रिया, सामग्री या पदार्थों का निरीक्षण करना और ऐसे प्रधिकरणों, अधिकारियों या व्यक्तियों को, आदेश द्वारा ऐसे निर्देश देना जो वह पर्यावरण प्रदूषक के निवारण, नियंत्रण उपशमन के लिए कार्यवाही करने के लिए आवश्यक समझें।

(xi) ऐसे कृत्यों को कार्यान्वित करने के लिए पर्यावरण प्रयोगशालाओं और संस्थाओं की स्थापना करना या उन्हें मान्यता देना, जो इस अधिनियम के अधीन उक्त कार्य ऐसी पर्यावरण प्रयोगशालाओं और सस्थाओं को सौपें जाए।

(xii) पर्यावरण प्रदूषक से सम्बन्धित विषयों की बावत जानकारी एकत्र करना और उसका प्रसार करना।

(xiii) ऐसे अन्य विषय, जो केंद्रीय सरकार इस अधिनियम के उपबन्धों का प्रभावपूर्ण कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के प्रयोजन के लिए आवश्यक या समीचीन समझे।

20.2.3.2 जल प्रदूषण (निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम–1974

(Water pollution (Prevention & control) act -1974)

ज्ल प्रदूषण (निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 की धारा 2 के उपखण्ड (3) में प्रदूषण से तात्पर्य यह है कि जल का ऐसा संदूषण या जल के भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणों का ऐसा परिवर्तन या किसी मल या व्यावसायिक बहिःस्त्राव या किसी अन्य द्रव, गैसीय या ठोस पदार्थों का जल में (प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से) ऐसा निस्सरण जो समस्याएँ उत्पन्न करे या जो ऐसे जल को स्वास्थ्य या क्षेत्र या घरेलू, वाणिज्यिक, औद्योगिक, कृषि या अन्य विधिसम्मत उपयोगों के लिए या जीव–जन्तुओं या पौधों या जलीय जीवों के जीवन और स्वास्थ्य के लिये अपहानिकर या क्षतिकर बनाता है या बनाना संभाव्य कराता है। उक्त नियम के माध्यम से दो प्रकार के मंडलों का गठन किया गया है जिनका विवरण निम्नवत है–

(अ) केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण मंडल का गठन (Establishment of central pollution control board) : जल प्रदूषण (निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम, 1974 की धारा 3(1) में, केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की स्थापना का उल्लेख है एवं **धारा 3 (2)** में सदस्य संख्या के संबंध में बताया गया हे कि जिसकी अधिकतम संख्या 16 होगी। इसमें–

(i) पूर्णकालिक अध्यक्ष–एक

(ii) केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य–पॉच

(iii) राज्य बोर्डों के सदस्यों में केन्द्रीय सरकार द्वारा नाम निर्दिष्ट सदस्य–पॉच

(iv) अशासकीय सदस्य–तीन, तथा

(v) कम्पनियों एवं निगमों का प्रतिनिधित्व करनें वाले सदस्य–दो होंगे।

(vi) अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति होगा जो पर्यावरणीय संरक्षण से सम्बन्धित नियमों के बारे में विशेष जानकारी अथवा अनुभव रखता हो तथा उसे उक्त विषय के बारे में प्रशासनिक जानकारी भी हो।

(vii) अशासकीय सदस्य ऐसे व्यक्ति होगें जिन्हें कृषि, मीन उद्योग या किसी अन्य उद्योग या व्यापार के हितार्थ सदस्य बनाया जाना आवश्यक प्रतीत हो।

(viii) बोर्ड के सदस्य सचिव के पद पर ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया जाएगा जो प्रदूषण – नियंत्रण के वैज्ञानिक अभियांत्रिकी अथवा प्रबंधकीय अर्हता का ज्ञान और अनुभव रखता हो।

(ब) राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का गठन (Establishmnt of state pollution control board) : जल प्रदूषण (निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1974 के अनुसार प्रत्येक राज्य में एक राज्य प्रदूषण बोर्ड का गठन **धारा 4** के अनुसार किया जाएगा। इस बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य होंगे–

(i) पूर्णकालिक अध्यक्ष – एक

(ii) राज्य सरकार नामित अधिकारी– पांच

(iii) राज्य बोर्ड नामित अधिकारी –पांच

(iv) अशासकीय सदस्य – तीन

(v) औद्योगिक इकाई प्रतिनिधि – दो

(vi) पूर्ण कालिक सचिव – एक

सदस्यों का कार्यकाल 3 वर्ष है तथा बोर्ड की बैठक तीन माह में कम से कम एक बार होगी।

(स) केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के कर्तव्य (Duties of CPCB) : इसके कर्तव्य निम्नानुसार हैं, जिनका उल्लेख धारा 16 में किया गया है

(i) जल–प्रदूषण के निवारण से जुड़े विषयों पर केन्द्र सरकार को सलाह देना।

(ii) राज्य बोर्डों को तकनीकी सहायता देना व मार्गदर्शन करना, उनके क्रियाकलापों में समन्वय व विवादों का निपटारा करना।

(iii) जल–प्रदूषण की तथा जल – प्रदूषण के निवारण , नियंत्रण या उपशमन की समस्याओं से संबंधित अन्वेषण और अनुसंधान क्रियान्वित और प्रायोजित करना।

(iv) जल–प्रदूषण के निवारण , नियत्रण या उपशमन के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम की योजना बनाना और उसका निष्पादन करना, उक्त कार्य में जन भागीदारी सुनिश्चित करना ।

(v) संबंधित राज्य सरकारों के परामर्श से सरिता या कुएं के लिए मानक अधिकथित करना समय – समय पर आवश्यकतानुसार उसमें रूपान्तरण करना उनकी साफ सफाई सुनिश्चित करना।

(vi) सरिता या कुऍं से जल के नमूने का अथवा मल या व्यावसायिक बहिःस्त्राव के नमूने का विश्लेषण कराने के लिए प्रयोगशालाएं स्थापित करना। प्रशिक्षण योजना कार्यों का संचालन करना,

(vii) मल तथा व्यावसायिक बहिःस्त्राव की अभिक्रिया और व्ययन सें संबंधित निर्देशिकाएं, संहिताएं या पथ प्रदर्शिकाएँ तैयार करना,

(viii) तकनीकी व सांख्यिकी ऑकड़े एकत्रित, संकलित और प्रकाशित करना,

(द) राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के कर्तव्य (Duties of SPCB) : राज्य (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) अधिनियम 1974 के अधीन राज्य बोर्ड के निम्नलिखित कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है। उनको धारा 17 में रखा गया है।

(i) **जल–प्रदूषण तथा जल**– प्रदूषण के निवारण ,नियंत्रण या उपशमन की समस्याओं से संबंधित अन्वेषण और अनुसंधान को बढावा देना, उनका संचालन व उसमें भाग लेना, उक्त के सम्बन्ध में जानकारी एकत्र करना और उसका प्रसार करना।

(ii) **जल प्रदूषण के निवारण**– नियंत्रण से संबंधित कार्यक्रम में लगे हुए या लगाए जाने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण को संगठित करने में केन्द्रीय बोर्ड के साथ सहयोग व सार्वजनिक शिक्षा कार्यक्रम बनाना।

(iii) मल व व्यावसायिक बहिःस्त्राव की अभिक्रिया के लिए संकर्म एवं संयंत्रों का निरीक्षण करना, साथ ही उक्त अभिक्रिया हेतु मितव्ययी और विश्वसनीय पद्धतियाँ निकालना।

(iv) बहिःस्त्रावों के निस्तारण के परिणामस्वरूप प्राप्त हो रहे जल की गुणवत्ता के लिए बहिःस्त्राव मानक अधिकथित करना, उसमें रूपान्तरण करना या उन्हें बलित करना।

(v) कृषि में मल और उपयुक्त व्यावसायिक बहिःस्त्रावों के उपयोग की पद्धतियॉ विकसित करना।

(vi) सरिता या कुएं के जल के नमूनों का अथवा व्यावसायिक बहिःस्त्राव के नमूनों का विश्लेषण कराने के लिए प्रयोगशालाएं स्थापित करना।

(vii) राज्य में सरिताओं और कुओं के प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण या उपशमन के लिए व्यापक कार्यक्रम की योजना बनाना तथा उसके निष्पादन को सुनिश्चित करना।

(viii) राज्य सरकार को ऐसे उद्योगों अवस्थान के बारे में सलाह देना जिनके चलाए जाने से किसी सरिता या कुएं का प्रदूषण संभाव्य है।

20.2.3.3 वायु प्रदूषण (निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम–1981

(Air pollution (Prevention & control) act – 1981)

वायु (प्रदूषक निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, सन् 1981 संसद ने वर्ष 1981 में विधि पारित की थी जो 30 मार्च 1981 को प्रवृत्त हुई थी। वायु की मात्रा का संरक्षण करने और वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए इसे अधिनियमित किया गया इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय व राज्य बोर्डों के निम्नलिखित कृत्य हैः

(अ) केन्द्रीय बोर्ड के कृत्य (Duties of CPCB)

(i) वायु के गुणवत्ता में सुधार और वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण तथा उपशमन से संबद्ध किसी विषय पर केन्द्रीय सरकार को सलाह देना।

(ii) वायु की गुणवत्ता के मानक निर्धारित करना तदनुसार गुणवत्ता में सुधार लाना तथा वायु–प्रदूषण का निवारण, नियंत्रण तथा उपशमन करना

(iii) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण, या उपशमन के लिए जन सम्पक्र के माध्यम से राष्ट्रयापी कार्यक्रम की योजना बनाना और उसे निष्पादित करना।

(iv) वायु प्रदूषण से सम्बन्धित सामग्री के बारे में जानकारी एकत्र करना और उसका प्रसार करना।

(v) राज्य बोर्ड के क्रियाकलापों में समन्वय करना और उनके बीच के विवादों को सुलझाना,

(vi) राज्य बोर्ड को तकनीकी सहायता देना और उसका मार्गदर्शक करना, वायु प्रदूषण तथा उनके निवारण, नियंत्रण या उपशमन की समस्यायो से संबंधित अन्वेषण और अनुसन्धान क्रियान्वित और प्रयोजित करना।

(vii) उक्त कृत्यों के दक्ष पालन करने के लिए केन्द्रीय बोर्ड एक या एक से अधिक प्रयोगशालाएँ स्थापित करनाया उन्हें मान्यता देना।

(viii) उक्त कृत्यों के पालन पर केन्द्रीय बोर्ड द्वारा नियुक्त समितियों का प्रयोजन करना और अपने कृत्यों की समुचित निर्वहन के लिए ऐसा कोई भी अन्य कार्य करना जो आवश्यक हो।

(ब) राज्य बोर्डों के कृत्य (Duties of SPCB)

वायु (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण), अधिनियम 1981 के तहत अधिनियम की धारा 17 में राज्य बोर्डों के कृत्यों के सम्बन्ध में प्रावधान हैं जो कि निम्नलिखित है–

(i) वायु प्रदूषण के निवारण, नियंत्रण तथा उपशमन के लिए व्यापक कार्यक्रम की बनाना रखना तथा उसके निष्पादन को सुनिश्चित करना।

(ii) वायु प्रदूषण के निवारण नियंत्रण तथा उपशमन के संबद्ध किसी विषय पर राज्य सरकार को सलाह देना।

(iii) वायु प्रदूषण के निर्वारण नियंत्रण तथा उपशमन संबधित जानकरी एकत्र करना व उसका प्रसार करना।

(iv) वायु प्रदूषण के निर्वारण नियंत्रण तथा उपशमन से संबंधित कार्यक्रम में लगे हुए या लगाये गए लोगों का प्रशिक्षण ।

(v) वायु–प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्रों में वायु की गुणवत्ता का मूल्यांकन करने के लिए निश्चित अंतरालों में निरीक्षण करना।

(vi) केन्द्रीय बोर्ड से परामर्श करके वायु की गुणवत्ता के लिए मानकों को अधिकथित करना ।

20.2.3.4 वन संरक्षण अधिनियम (Forest conservation act 1980/1988)

1927 के भारतीय वन अधिनियम ने 1920 से पहले पारित वन संबंधी सभी कानूनों को समन्वित किया। इस अधिनियम ने सरकार और वन विभाग को आरक्षित वन (Reserved forests) बनाने तथा आरक्षित वनों का उपयोग केवल सरकारी कामों के लिए करने का अधिकार दिया। इसने संरक्षित वन (Protected forests) भी बनाए जिसमें स्थानीय जनता द्वारा संसाधनों के उपयोग पर नियंत्रण था। कुछ वनों पर ग्रामीण समुदायों का नियंत्रण था और वे ग्राम वन कहलाते थे। यह कानून 1980 के दशक तक लागू रहा जब यह महसूस किया गया कि केवल इमारती लकडी के लिए वनों का संरक्षण उचित नही है तथा वनों से प्राप्त सेंवाओं और उसकी जैव – विविधता जैसी मूल्यवान परिसंपतियों के संरक्षण का महत्व इमारती लकडी से प्राप्त राजस्व के महत्व से कहीं अधिक है। इस तरह एक नया कानून अनिवार्य हो गया। इसलिए 1980 में वन संरक्षण अधिनियम पारित हुआ जिसे 1988 में संशोधित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार :

(i) एक प्राकृतिक धरोहर के रूप में **वन संरक्षण** को स्थान दिया गया है; इसमें जैव – विविधता और जननिक (genetic) संसाधनों का संरक्षण भी शामिल है। इसमें लकड़ी, खाद्य पदार्थों, चारे और अन्य वन्य उत्पादों के बारे में स्थानीय जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति को भी महत्व दिया गया है। इसमें पर्यावरण के स्थायित्व

और पारितंत्र के संतुलन की रक्षा को प्राथमिकता दी गई है। इसमें स्पष्ट कहा गया है कि संरक्षित वन क्षेत्रों के तंत्र को मजबूती और विस्तार दिया जाना चाहिए ।

(ii) 1992 में संविधान के 73वें और 74वें संशोधनों ने पंचायती राज को आगे बढाया। इनके अनुसार राज्य स्थानीय पंचायतों को स्थानीय वन संसाधनों के प्रबंध का अधिकार दे सकते हैं।

(iii) एक **आरक्षित वन** में किसी को भी कटाई करनें या आग जलाने का अधिकार नहीं है। मवेशियों का आरक्षित वनों में प्रवेश वर्जित है। पेड़ गिराना, लकडी, छाल या पत्ते जमा करना, खनन कार्य करना या दूसरी वस्तुएँ जमा करना दंडनीय अपराध है।

(iv) संरक्षित वनों में अगर : कोई व्यक्ति पेड काटने, छाल नोचने या पत्ते तोड़ने, वनों को आग लगाने, फैलाव रोकने की सावधानी रखे बगैर आग जलाने आदि के अपराध करता है, इमारती लकडी ले जाता है या मवेशियों से किसी पेड को नुकसान पहुचाता है तो वह दण्डनीय है।

भारत में पहली वन नीति (Forest policy) 1952 में बनी। 1952 और 1988 के बीच वनो का इतना विनाश हुआ कि वनो और उनके उपयोग पर एक नई नीति बनाना आवश्यक हो गया । पहले की वन नीतियों का केन्द्र केवल राजस्व का सृजन था। 1980 के दशक में स्पष्ट हो गया कि वनों का संरक्षण उनके अन्य कार्यों के लिए भी आवश्यक है, जैसे मृदा और व्यवस्थाओं के संरक्षण के लिए जो पारितंत्र कोसुरक्षित रखने में सहायक होते है।, इसमें स्थानीय निवासियों के लिए वनो से प्राप्त वस्तुओं और सेवाओं के उपयोग की व्यवस्था भी थी। केन्द्र सरकार ने एक सलाहकार समिति (Advisory committe) बना कर वनो के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार उसको दिया है। उक्त समिति में निम्नलिखित सदस्य होते हैं :

1. वनो का महानिरीक्षक – अध्यक्ष
2. अतिरिक्त वन महानिरिक्षक – सदस्य
3. संयुक्त आयुक्त, मृदासंरक्षण– सदस्य
4. तीन प्रमुख वैज्ञानिक – सदस्य
5. उपमहानिरिक्षक वन – सदस्य सचिव

20.2.3.5 वन्य जीव संरक्षण अधिनियम–1972 (Wildlife protection act 1972)

1972 में पारित इस अधिनियम का संबंध राष्ट्रीय पार्कों और अभयारण्यों की घोषणा और अधिसूचना से है। यह राज्यों के वन्य जीव प्रबंध के ढांचे और वन्य जीव प्रबंध के लिए पदों की व्यवस्था करता है। इसमें वन्य जीव सलाहकार बोर्ड की स्थापना का प्रावधान भी है। वन्यजीव सलाहकार बोर्डो में निम्नलिखित सदस्य होंगे :

1. केन्द्र अथवा राज्य सरकार का वन मंत्री–अध्यक्ष

2. केन्द्र अथवा राज्य सरकार का वन सचिव–सदस्य
3. सम्बन्धित विधानसभा के दो सदस्य–सदस्य
4. राज्य सरकार का मुख्य वन अधिकारी–पदेन सदस्य
5. निदेशक द्वारा नामित अधिकारी–सदस्य
6. मुख्य प्राणी वार्डन–पदेन सदस्य
7. केन्द्र अथवा राज्य सरकार द्वारा नामित 10 व्यक्ति जो वन्य प्राणी संरक्षण अथवा जन जातियों से सम्बन्धित हो।

इस अधिनियम की अनुसूची (i) से (iv) में दर्ज सभी पशुओं के शिकार पर प्रतिबंध है। इन्हें विनाश के खतरे की गंभीरता के अनुसार अधिसूचित किया गया। जिन पौधों का संरक्षण आवश्यक है, वे अनुसूची (vi) में दर्ज हैं। उक्त नियम में 1982,1986, 1991 ,1993 तथा 2002 में संशोधन किये गए। उक्त अधिनियमः

(i) स्थानीय जनता द्वारा संसाधनों के व्यावसायिक उपयोग पर रोक लगाता है। इसने सामुदायिक रिजर्व क्षेत्र की स्थापना जैसी नई धारणाएँ सामने रखीं। इसने अनेक परिभाषाओं को बदला।

(ii) अब पशुओं में मछलियाँ भी शामिल हैं। पारितंत्रों का संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए वनो के उत्पादों की पुनर्परिभाषा की गई है।

(iii) दिए गए लाइसेंस या परमिट की शर्तों को भंग करने वाला व्यक्ति एक अपराध का दोषी माना जाएगा। अपराध पर 3 वर्ष कैद की सजा का प्रावधान है या फिर 25,000 रूपए का जुर्माना या दोनों की सजा दी जा सकती है।

(iv) अनुसूची (i) में एवं अनुसूची (ii) के भाग 2 में दर्ज किसी पशु के संबंध में कोई भी अपराध, जैसे ऐसे किसी पशु के मांस या खाल के उपयोग हेतु पशु वध पर कम से कम एक साल कैद की सजा और 25,000 रूपए जुर्माने का कारण बन सकता है। कैद को बढाकर छह साल तक किया जा सकता है।

(v) इस उपभाग में दर्ज कोई अपराध दूसरी बार या उसके बाद भी किया जाए तो कैद की सजा छह साल हो सकती है और दो साल से कम नही होगी और साथ में 10,000 रूपए जुर्माने का प्रावधान भी है।

20.2.4 पर्यावरण संरक्षण में स्वयंसेवी संस्थाओं व स्थानीय निकायों की भूमिका (Role of NGOs and local organisations in environmental protection)

पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण के लिए कई संस्थान काम कर रहे हैं इनमें से कुछ प्रसिद्ध सरकारी या गैर सरकारी संस्थाऍ शामिल हैं जिसके विवरण निम्नलिखित हैं :

(i) सरकारी सस्थायें

(अ) भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, कोलकाता (Botanical Survey of india-BSI, Kolkata) : बीएसआइ की स्थापना रॉयल बोटेनिकल गार्डन्स, कलकत्ता में 1890 में हुई थी किंतु 1939 के बाद कुछ वर्षों के बाद यह बंद रहा। इसका पुनर्गठन करने और विभिन्न क्षेत्रो की स्थापना और विकास करने के पश्चात् 1976 में कार्यक्रम कार्यान्वयन और मूल्याकंन समिति ने वर्गीकरण विज्ञान (Taxonomic Research) को प्रोत्साहित करने और **फ्लोरा ऑफ इंडिया** परियोजना के अंतर्गत देश की वनस्पतियों की एक विस्तृत सूची बनाने के लिए आवश्यक वैज्ञानिक कुशलता को बढ़ाने,जाति विषयक वनस्पतियों के अध्ययन, वनस्पति संग्राहालयों के आधुनिकरण और रखरखाव तथा वनस्पति विज्ञानियों एवं आम जनता में दिलचस्पी उत्पन्न करने के लिए सर्वे के लक्ष्यों और उद्देश्यों को पुनः परिभाषित किया। नवीनतम समीक्षा (1987) में बोटेनिकल सर्वे के लक्ष्य एवं उद्देश्यों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया हालाकि पादप संसाधनों के सर्वेक्षण और खोज, संकटग्रस्त प्रजातियो की सूची बनाने, राष्ट्रीय वनस्पतियों पर सूचनाएँ प्रकाशित करने, वनस्पति संग्रहालयों में राष्ट्रीय डाटा बैंको का निर्माण करने तथा सजीव पौधों का संकलन, पौधों के वितरण, तथा उनके नामकरण के कार्यो को प्रथमिकता दी गई है ।

(ब) भारती विद्यापीठ पर्यावरण शिक्षा एवं शोध संस्थान, पुणे (Bharti Vidyapeeth Institute of Environmental Education and Research ,BVIEER,Pune) : यह संस्थान पर्यावरण विज्ञान और भू–संरचना में विज्ञान प्रवर्तनकारी डिप्लोमा (Diploma in Environmental Education) भी प्रदान करता है यह एक व्यापक बर्हिमुखी कार्यक्रम (outreach program) चलाता है, जिसमें 435 से अधिक विद्यालय शामिल है, जहाँ शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाता है और पर्यावरण शिक्षा के कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। सस्थान में किये जाने वालेअनुसधांनो में जैव – विविधता के संरक्षण, नगरीय नियोजन, स्वच्छता प्रौघोगिकी, पर्यावरण शिक्षा और वन्य जीवन प्रबंधन पर ध्यान दिया जाता है। यह प्राकृतिक और वस्तुशिल्प स्थलो के लिए , कम लागत के, ब्याख्यान केन्द्रो ंका निर्माण करता है। विभिन्न प्रकार के लक्ष्य समूहों के लिए इस संस्थान ने बडी मात्रा में उन्नत पर्यावरण शिक्षा सामग्री तैयार की है।

(स) केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, नई दिल्ली (Central Pollution Control Board,CPCB,New Delhi) : यह एक सांविधिक सगंठन है जिसका गठन जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1974 के अंतर्गत सितम्बर 1974 में प्रदूषण की रोकथाम और नियत्रंण के लिए किया गया था। इसके पश्चात इस बोर्ड को वायु प्रदूषण (निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम 1981 के अंतर्गत जिससे भारत के पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार किया जा सके। इसके अंतर्गत बड़ी संख्या में गतिविधियां और कार्यक्रम शुरू किए गए, जैसे उपलब्ध वैज्ञानिक जानकारी के आधार पर स्त्रोत–विशिष्ट प्रदूषण नियंत्रण मापदंडो और दिशानिर्देशों का विकास, परिवेशी वायु एवं जल की

गुणवत्ता के मापदंडों की स्थापना व निगरानी, स्वचलित वाहनों के ईंधन की गुणवत्ता एवं उनके धुएं के उत्सर्जन के मापदंड स्थापित करना, और पर्यावरण के अनुरूप औघोगिक विकास की ठोस योजनाओं के निर्माण पर नजर रखना। सीपीसीबी के अतिरिक्त देश में 22 **राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड** हैं जो राज्यों में पर्यावरण की सुरक्षा और प्रदूषण नियंत्रण लागू करने के लिए कार्यरत हैं।

(द) भारतीय वन्य जीव संस्थान, देहरादून (Wildlife Institute of India, WII, Dehradun) : इस सस्थान की स्थापना सन् 1982 में, वन आधिकारियों के प्रमुख प्रशिक्षण संस्थान के रूप में की गई थी। इस संस्थान ने भारत की जैविक संपदा पर विपुल मात्रा में सूचनाएँ प्रदान की हैं यह वन्य जीव संसाधन एवं प्रबंधन के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम तथा शैक्षणिक पाठक्रम चलाता है। इसने बड़ी सख्या में वन विभाग के अधिकारियों और कर्मचारियों को वन्य जीवन प्रबधकों के रूप में प्रशिक्षित किया है। इसके स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम (एम.एस–सी.) में वन्य जीव विज्ञान विषय के श्रेष्ठतम वैज्ञानिकों को प्रशिक्षित किया गया है। इसका एक पर्यावरण प्रभाव आकलन प्रकोष्ठ (Environmental Impact Assessment) भी है जिसमें कर्मचारियों को आर्थिक विकास, वन्य जीवन जैविकी, आवास प्रबंधन और प्रकृति के विश्लेषण इत्यादि का प्रशिक्षण दिया जाता है।

(य) भारतीय प्राणी सर्वेक्षण, कोलकता (Zooligical Survey of india, ZSI, Kolkata) : इसकी स्थापना सन् 1916 में की गई थी। इसका उद्देश्य भारत के प्राणिजगत का सुव्यवस्थित सर्वेक्षण करना था। इसने **प्रजातियों के नमूने** संग्रहित किए और, उनके आधार पर पशु जगत का अध्ययन किया। इसका काम 1875 में स्थापित भारतीय संग्रहालय कोलकता में एकत्रित नमूनों से प्रारम्भ हुआ। 1814 और1875 के बीच एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल में संग्रहित नमूने तथा 1878 और 1916 के बीच भरतीय संग्रहालय में संग्रहित नमूने इस संग्रहालय को सौंप दिये गये थे। वर्तमान में यहाँ पर 10 लाख से अधिक नमूने संग्रहित हैं। एवं यह एशिया में उपलब्ध प्रजातियों का सबसे बडा खजाना है। इसने वर्गीकरण विज्ञान और पारिस्थितकी पर बहुत काम किया है । इस संगठन के **16 क्षेत्रीय केन्द्र** है।

इसके द्वारा निर्धारित किये गए उद्‌देश्य निम्नलिखित हैं :

(a) देश के प्राणिजात संसाधनों का अन्वेषण, सर्वेक्षण और प्रलेखीकरण।

(b) सर्वेक्षण के दौरान एकत्र की गई प्राणिविज्ञान सम्बन्धी सामग्रियों का वर्गीकरणात्मक अध्ययन।

(c) देश के प्राणिजात की संकटापन प्रजातियों की सूची बनाना तथा उनकी निगरानी।

(d) राष्ट्रीय जन्तु विज्ञान संग्रह का अनुरक्षण व विकास

(ii) गैर सरकारी संस्थान

(अ) मुंबई प्राकृतिक इतिहास समिति, मुंबई (Bombay Natural History Society ,BNHS, Mumbai) : इसका आरंभ सन् 1883 में छह सदस्यों की एक छोटी समिति के रूप में हुआ था। शिकारियों और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र

से आए लोगों के एक समूह से आगे चलकर इसने एक महत्वपूर्ण **शोध संस्थान** का रूप ले लिया जो देश की संरक्षण नीतियों के निर्धारण में मदद करता है। यह एक बहूआयामी संस्थान है जो कि वन्य जीवन नीतियों के निर्माण, अनुसंधान, लोकप्रिय प्रकाशनो और सार्वजनिक कार्यवाही इत्यादि में अपना विशेष योगदान देता है। भारत में यह संरक्षण – अनुसंधान पर आधारित सबसे पुराना गैर सरकारी सगंठन है जो प्रजातियों और परितंत्रों के संरक्षण हेतु सघर्ष में अग्रणी भूमिका निभाता रहा है। यह **हॉर्नबिल** नामक एक लोकप्रिय पत्रिका और अतंर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त पत्रिका **जर्नल ऑन नेचुरल हिस्ट्री** का भी प्रकाशन करता है। इसके अन्य प्रकाशनों में **सलीमअली कीहैंडबुक ऑन बर्ड्स**, **जे0सी0 डेनियल कृत बुक ऑफ इंडियन रेप्टाइल्स**, **एस0एच0 प्रेटर की बुक ऑफ इंडियन मैमल्स और पी0वी0 बोले की बुक ऑफ इंडियन ट्रीज** शामिल हैं। सलीम अली इसके महानतम वैज्ञानिको में से एक थे, जिनका भारतीय उपमहाद्धीप के पक्षियों पर किया गया अनुसंधान विश्व भर में प्रसिद्ध है। पिछले कुछ वर्षो में बीएनएचएस नें वन्य जीवन से संबधित कानून बनाने में सरकार की मदद की है और ‘‘खामोश वादी को बचाओ’’ (Save the Silent Valley) जैसे अभियान चलाए हैं।

(ब) विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्र, नई दिल्ली (Center for Science Environment, CSE, New Delhi) : यह केन्द्र पर्यावरण सम्बन्धी अनेक कार्यक्रमों, कार्यशालाओं और सम्मेलनों का आयोजन करता है और पर्यावरण से संबंधित पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित करता है। इसने भारत में पर्यावरण की स्थिति पर **स्टेट ऑफ इडिंयाज एनवायरनमेंट** नामक एक रिपोर्ट प्रकाशित की थी जो पर्यावरण पर एक नागरिक रिपोर्ट के रूप में प्रकाशित होने वाली अपने प्रकार की पहली रिपोर्ट थी। यह एक लोकप्रिय पाक्षिक पत्रिका **डाउन टु अर्थ** का भी प्रकाशन करता है। यह पुस्तकों , पोस्टरों और वीडियो फिल्मों के रूप में पर्यावरणीय सूचनाएं भी प्रकाशित करता है और जैव – विविधता से संबधित विषयों पर कार्यशालाओं और संगोष्ठियों का आयोजन करता है।

(स) सीपीआर एनवायरनमेंटल एजुकेशन सेंटर, चेन्नई (CPR Environmental Education Center, CPREEC, Chennai) : इस केन्द्र की स्थापना 1988 में की गई थी । यह आम जनता में पर्यावरण के बारे में जागरूकता फैलाने और इसके संरक्षण में रूचि उत्पन्न करने के लिए अनेक प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करता है । प्रकृतिक संसाधनों के संरक्षण को बढावा देने के लिए यह संगठन अक्सर अपना ध्यान गैर – सरकारी संगठनों , शिक्षकों, महिलाओं, युवाओं और बच्चों पर केंद्रित करता है । इसके कार्यक्रमों में वन्य जीवन और जैव विविधता से संबंधित मुद्दे शामिल होते हैं ।यह बड़ी सख्यां में पत्र पत्रिकाएं भी प्रकाशित करता है ।

(द) पर्यावरण शिक्षा केंन्द्र, अहमदाबाद (Center for Environmental Education, CEE, Ahmedabad)– इस केन्द्र को 1989 में आरंभ किया गया था । यह केन्द्र पर्यावरण पर अनेक प्रकार के कार्यक्रम आयोजित करता है और विभिन्न लक्ष्य समूहों के लिए अनेक प्रकार की शिक्षण सामाग्री तैयार करता है।

(य) वर्ल्ड वाइड फंड फार नेचर इंड़िया, नई दिल्ली (World Wide Fund for Nature India, WWF, New Delhi) : इसको 1969 में मुंबई में आरंभ किया गया, जिसके बाद इसका मुख्यालय दिल्ली में स्थानांतरित कर दिया

गया। यह अनेक कार्यक्रमों का सचांलन करता है जिसमें स्कूली बच्चों के लिए नेचर क्लब ऑफ इंडिया प्रोग्राम भी शामिल है। यह पर्यावरण और विकास संबंधी मुद्दों के लिए एक विचार मंच (Think tank) की भूमिका निभाता है और उनका प्रचार करता है।

हमने जाना

पर्यावरण के घटकों को दो श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं। जैव अपघटित प्रदूषक एवं जैव अनापघटित प्रदूषक।

वर्तमान समय के प्रमुख पर्यावरण चुनौतियों में जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, भूमि प्रदूषण इत्यादि हैं।

पर्यावरण संरक्षण के लिये राज्य, राष्ट्र एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विविध प्रावधान बनाये जा रहे हैं, जिससे पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित किया जा सके।

पर्यावरण संरक्षण के लिये प्रदेश व राष्ट्र स्तर पर अनेक संगठन कार्यरत हैं।

कठिन शब्दों के अर्थ

पर्यावरण प्रदूषण – पर्यावरण (भूमि, जल, वायु) में हानिकारक पदार्थों का मिलना एवं उनके भौतिक, रासायनिक तथा जैविक लक्षणों में अवांछित परिवर्तनों का होना मृदा/जल/वायु प्रदूषण कहलाता है।

जैव अपघटनीय कचरा : इसमें कार्बनिक प्रकृति का कचरा आता है जिसको सूक्ष्म जीवों द्वारा अपघटित कर दिया जाता है। इसलिए इसे नष्ट होने वाला कचरा भी कहते हैं।

पारम्परिक उर्जा स्रोत : इन स्रोतों का उपयोग हम पीढियों से ऊर्जा के लिए कर रहे हैं इनमें – लकडी, कोयला, पेट्रोलियम पदार्थ (खनिज तेल), प्राकृतिक गैस इत्यादि आते हैं।

अभ्यास के प्रश्न

1. पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख घटक कौन–कौन से हैं? उदाहरण सहित लिखिये।
2. पर्यावरण प्रदूषण की प्रमुख चुनौतियाँ क्या हैं?
3. आधुनिक जीवन पद्धति से पर्यावरण प्रदूषण कैसे बढ़ रहा है? हम इसे कम करने के लिये क्या उपाय कर सकते हैं?
4. पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित विविध विधिक प्रावधानों को स्पष्ट कीजिये।
5. प्रदूषण नियंत्रण के लिये कौन–कौनसी संस्थायें महत्त्वपूर्ण प्रयास कर रहीं हैं?

आओ करके देखें

अपने क्षेत्र में पर्यावरण संरक्षण के लिये आप क्या उपाय कर सकते हैं? उसकी सूची बनाकर एक कार्य–योजना तैयार कीजिये और संपर्क कक्षाओं में इस पर परामर्शदाताओं का अभिमत प्राप्त कीजिये।

अपने आस–पास के पर्यावरण को ध्यानपूर्वक देखकर बताइये कि आपके क्षेत्र में किस प्रकार का प्रदूषण सबसे अधिक है। इसे रोकने के लिये कौन–कौन से व्यवहारिक उपाय हो सकते हैं।

अपने क्षेत्र के स्कूल में पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता और महत्त्व पर एक भाषण प्रतियोगिता का आयोजन करवाईये। छात्रों द्वारा व्यक्त विचारों को संकलित कर संपर्क कक्षाओं में प्रस्तुत कीजिये।

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ सूत्र

पर्यावरण और प्रदूषण – V.P. Sati, अविष्कार प्रकाशन, जयपुर–(राज.)

पर्यावरण संरक्षण एवं सामाजिक दायित्व, M.C. Khandela, अविष्कार प्रकाशन, जयपुर–(राज.)

पर्यावरण संरक्षण एवं सतत विकास, आर. के. सिंह, अविष्कार प्रकाशन, जयपुर (राज.)

■■■

20.3 : गंभीर वैश्विक पर्यावरणीय चुनौतियाँ एवं समाधान
(Severe Global Environmental Challenges & Solution)

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि–

जैव विविधता क्या है? जैव विविधता के संरक्षण की आवश्यकता क्यों है?

जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग के क्या खतरे हैं? इनसे कैसे निपटा जा सकता है?

जलवायु परिवर्तन के विविध पक्ष कौन–कौन से हैं? इस दिशा में क्या–क्या सरकारी और गैर सरकारी प्रयास किये जा रहे हैं?

परम्परागत ऊर्जा स्रोत क्या हैं? इनके उपयोग से पर्यावरण संरक्षित कैसे रखा जा सकता है?

20.3.1 जैव विविधता संरक्षण–अर्थ एवं प्रकार (Biodiversity conservation-meaning & type)

(क) अर्थ जैव विविधता से अभिप्राय किसी दिये हुए स्थान एवं काल खण्ड में विभिन्न प्रकार के जीवों की उपस्थिति से है। पृथ्वी पर किसी पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न प्रकार के जीव एवं उनमें पायी जाने वाली विभिन्नताएं तथा उनके पारस्परिक अन्तः या अन्र्तसम्बन्धों को भी यह व्याख्यित करती है।'' सजीवों में पाई जाने वाली भिन्नता ही जैव विविधता कहलाती है।''

पृथ्वी पर जैव विविधता 8वे बडे भू भागों में पाई जाती है जिसमे 193 जैव भौगोलिक प्रदेश है। प्रत्येक जैव भौगोलिक प्रदेश एक पारिस्थितिक तन्त्र का बना होता है जिसमे जीवित जातियो के समुदाय एक पारस्थितिकी भाग में रहते हैं। उपोष्ण/उष्णकटिबन्धीय भागों में स्थित विकासशील देशों में जैव विविधता शीतोष्ण भाग में स्थित औद्योगिक देशों की अपेक्षा अधिक विपुल है। फसलों और घरेलू जन्तुओं के वेविलोवियन सैन्टर्स आफ डाइवर्सिटी भी इन्ही विकासशील देशो मे स्थित है।

जैव विविधता को तीन स्तरों पर देखा जा सकता है फलतः यह तीन प्रकार की होती हैं।

(i) अनुवांशिक विविधता (Genetic diversity) : ''पौधों या प्राणियों की किसी जाति के हर दो जीव अपनी जननिक संरचना मे एक दूसरे से बहुत भिन्न होता है। यह अनुवांशिक विविधता कहलाती है।''

(ii) प्रजातीय विविधता (Species diversity) : ''किसी परितन्त्र में मौजूद पौधों और प्राणियों की विभिन्न प्रजातियों की संख्या उसकी प्रजातीय विविधता कहलाती हैं।''

(iii) पारितंत्रीय विविधता (Ecological diversity) : ''एक ही परितन्त्र में विभिन्न प्रकार के जीव उपस्थित होते हैं। इन जीवों के रंग—रूप, जाति, भोजन, स्वाभाव इत्यादि में पायी जाने वाली विविधता को परितन्त्रीय विविधता कहते हैं।''

"जैव विविधता को संरक्षित करना जैव विविधता का संरक्षण कहलाता है।'' चूँकि जैव विविधता मानव सभ्यता के विकास की स्तम्भ है इसलिए इसका संरक्षण अति आवश्यक है। जैव विविधता हमारे भोजन, कपड़ा, औषधि, ईंधन आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ – साथ पर्यावरण संरक्षण में भी भूमिका अदा करती है। जैव विविधता पारिस्थितिक सन्तुलन को बनाये रखने में सहायक होती है। इसके अतिरिक्त यह प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़, सूखा आदि से राहत प्रदान करती है। वास्तव में जैव विविधता प्रकृति की स्वाभाविक सम्पत्ति है और क्षय एक प्रकार से प्रकृति का क्षय है। अतः प्रकृति को नष्ट होने से बचाने के लिए जैव विविधता को संरक्षण प्रदान करना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

चित्र 3.1 : वानस्पतिक जैव विविधता

चित्र 3.2 : जंतु जैव विविधता

(ख) जैव विविधता के संरक्षण के प्रकार

जैव विविधता का संरक्षण मुख्यतः दो प्रकार से किया जाता है। जिन्हे यथास्थल तथा बहिःस्थल संरक्षण के नाम से जाना जाता है।

1. **यथास्थल संरक्षण** : इस विधि के अन्तर्गत प्रजाति का संरक्षण उसके प्राकृतिक आवास अथवा मानव द्वारा निर्मित पारिस्थितिक तन्त्र में किया जाता है। जहाँ वो पाये जाते हैं। इस विधि में विभिन्न श्रेणियों के सुरक्षित क्षेत्रों का प्रबन्धन विभिन्न उददेश्यों से समाज के लाभ हेतु किया जाता है। सुरक्षित क्षेत्रों में **राष्ट्रीय पार्क, अभयारण्य तथा जैवमण्डल रिजर्व** आदि प्रमुख है।राष्ट्रीय पाक्र की स्थापना का प्रमुख उद्‌देश्य वन्य जीवन को संरक्षण प्रदान करना है जबकि अभयारण्य की स्थापना का उद्‌देश्य किसी विशेष वन्य–जीव की प्रजाति को संरक्षण प्रदान करना है। जैव मण्डल रिजर्व बहुत उपयोगी संरक्षित क्षेत्र होता है जिसमें आनुवशिंक विविधता को उसके प्रतिनिधि पारिस्थितिक तन्त्र में वन्य जीवन जनसंख्या, आदिवासियों की पारंपरिक जीवनशैली आदि को सुरक्षा प्रदान कर संरक्षित किया जाता है।

   भारत में यथास्थल संरक्षण में उल्लेखनीय कार्य किया है। देश में कुल 89 राष्ट्रीय पार्क 500 अभयारण्य हैं जो क्रमशः 41 लाख एवं 120 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल पर फैले हैं तथा देश में कुल 15 जैवमण्डल रिजर्व हैं। नीलगिरि जैवमण्डल रिजर्व भारत का पहला जैवमण्डल रिजर्व था जिसकी स्थापना 1986 में की गयी थी। यूनेस्को ने भारत के सुन्दर वन रिजर्व, मन्नार की खा़डी रिजर्व तथा अगस्थमलय में जैवमण्डल रिजर्व को विश्व जैवमण्डल रिजर्व का दर्जा दिया हुआ है

2. **बहिःस्थल संरक्षण** : यह संरक्षण कि वह विधि है जिसमें प्रजातियों का संरक्षण उनके प्राकृतिक आवास के बाहर जैसे **वानस्पतिक वाटिकाओं, जन्तुशालाओं, आनुवंशिक संसाधन केन्द्रों, संवर्धन संग्रहालयों** आदि स्थानों पर किया जाता है। इस विधि द्वारा पौधों का संरक्षण सुगमता से किया जा सकता है। इस विधि में बीज बैंक, वानस्पतिक वाटिका, ऊतक संवर्धन तथा आनुवंशिक अभियान्त्रिकी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

   जहाँ तक फसल आनुवंशिक संसाधन का सम्बन्ध है भारत ने बहिःस्थल संरक्षण में प्रसंशनीय कार्य किया है। जीन कोष में 34,000 से ज्यादा धान्य फसलों तथा 22,000 दलहनी फसलों का संग्रह किया गया है जिन्हे भारत में उगाया जाता है। इसी तरह का कार्य पशु धन, कुक्कुट पालन तथा मत्स्य पालन के भी क्षेत्र में भी किया गया है।

20.3.2 : देश एवं प्रदेश में जैव–विविधता–चुनौतियां
(Biodiversity challenges in country & state)

जैव विविधता क्षय के विभिन्न कारण हैं जिनमें आवास का विनाश, आवास का विखण्डन, पर्यावरण प्रदूषण, विदेशी मूल के पौधों का आक्रमण, अति–शोषण, वन्य जीवों का शिकार, वनविनाश, अति चराई, बीमारी, चिडियाघर तथा शोध हेतु प्रजातियों का उपयोग, नाशीजीवों तथा परभक्षियों का नियंत्रण, प्रतियोगी अथवा परभक्षी प्रजातियों का प्रवेश आदि प्रमुख हैं :

1. **आवास विनाश :** मानव जनसंख्या वृद्धि एवं मानव गतिविधियाँ जैव आवास के विनाश के प्रमुख कारण हैं। बहुत से देशों में विशेषकर द्वीपों पर जब मानव जनसंख्या के घनत्व में बढोत्तरी होती है तो ज्यादातर प्राकृतिक आवास नष्ट हो जाते हैं। दुनिया के 61 मे से 41 प्राचीन विश्व उष्णकटिबंधीय देशों में 50 प्रतिशत से ज्यादा वन्य–जीवों के आवास नष्ट हो चुके हैं। ज्यादातर स्थितियों में आवास विनाश के प्रमुख कारक औद्योगिक तथा वाणिज्यिक गतिविधियाँ है जिनका संबन्ध वैश्विक अर्थव्यवस्था जैसे– खनन, पशु पालन, कृषि, वानिकी, बहुउदद्देश्यीय परियोजनाओं की स्थापना आदि से है। वर्षा वन, उष्णकटिबंधीय शुष्कवन, नमभूमियाँ, ज्वारीयवन तथा घास के मैदान संकटग्रस्त आवास हैं।

2. **आवास विखण्डन :** आवास विखण्डन वह प्रक्रिया है जिसमें एक विशाल क्षेत्र का आवास क्षेत्रफल में कम हो जाता है और आमतौर से दो या अधिक टुकड़ों में बँट जाता है। ये बहुधा एक दूसरे से अलग–अलग क्षरित अवस्था में प्रकट होते हैं। आवास का विखण्डन प्रजातियों के विस्तार तथा स्थापना को सीमित कर देता है, जिससे जैव–विविधता पर विपरीत प्रभाव पडता है।

3. **पर्यावरण प्रदूषण :** बढता पर्यावरण प्रदूषण जैव–विविधता क्षरण का एक प्रमुख कारण बनता जा रहा है। पर्यावरण प्रदूषण के लिए पीडकनाशी, औद्योगिक रसायन तथा अपशिष्ट आदि मुख्यतः उत्तरदायी हैं। पीडकनाशी प्रदूषण के परिणामस्वरूप मृदा के सूक्ष्मजीवी वनस्पतियों तथा जन्तुओं की मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त जल वर्षा के बहाव से जब पीडकनाशी जल स्त्रोंतों में पहुँचते हैं तो वहाँ भी सूक्ष्मजावी वनस्पतियों तथा जंतुओं को को मार देते हैं परिणामस्वरूप जैव–विविधता का क्षय होता है। जैसे कीटनाशी डी0डी0टी0 (डाइ क्लोरो डाइफिनाइल ट्राइक्लोरो एथेन ($C_{14}H_9Cl_5$) का प्रयोग पक्षियों की गिरती आबादी का एक प्रमुख कारण हैं। डी.डी.टी. खाद्य श्रृंखला के जरिए पक्षियों के शरीर में पहुँचता है, जहाँ वह इस्ट्रोजेन नामक हार्मोन की गतिविधि को प्रभवित करता है जिससे अण्डे की खोल कमजोर हो जाती है। परिणामस्वरूप अण्डा समय से पहले फूट जाता है जिससे भ्रूण की मृत्यु हो जाती है। इसी प्रकार वर्षा के कारण नदियों तथा झीलों का अम्लीकरण जलीय जीवों के लिए एक प्रमुख खतरा बनता जा रहा है।

4. **विदेशी मूल के पौधों का आक्रमणः** विदेशी मूल के मूल के पौधों के आक्रमण के परिणामस्वरूप जैव – विविधता पर विपरीत प्रभाव पडता है इसलिए इन्हे 'जैविक प्रदूषक' की संज्ञा दी जाती है। सफल विदेशी मूल के पौधों की प्रजाति देशी प्रजातियों को विस्थापित कर उन्हें विलुप्ति के स्तर तक पहुँचा देती है। इसके अतिरिक्त वह आवास पर विपरीत प्रभाव डालकर देशी प्रजाति के अस्तित्व के लिए खतरा पैदा कर देती है। भारत में बहुत से विदेशी मूल के पौधे जैसे पार्थिनियमहिस्ट्रोफोरस, लैंटाना कैमरा, गैलिंसोगा पार्विफोलिया, यूपेटोरियम एडिनोफोरम, यूपेटोरियम ओडोरेटम, प्रोसोपिस जूलिफ्लोरा आदि जैव–विविधता क्षरण के प्रमुख कारण साबित हो रहे हैं।

5. **अति–शोषण :** बढ़ती मानव जनसंख्या के कारण जैविक संसाधनों का दोहन भी बढ़ा है। संसाधनों का उपयोग तब ज्यादा बढ जाता है जब पूर्व में उपयोग नहीं हुई अथवा स्थानीय उपयोग वाली प्रजाति के लिए वाणिज्यिक बाजार विकसित हो जाता है। अति शोषण दुनिया की लगभग एक–तिहाई संकटग्रस्त कशेरूकी जीवों के लिए

प्रमुख खतरा है। बढती ग्रामीण बेरोजगारी, उन्नत शोषण विधियों का विकास तथा अर्थ व्यवस्था के वैश्वीकरण ने बहुत से प्रजातियों को विलुप्त के शीर्ष पर पहुँचा दिया है। अगर प्रजाति पूरी तरह खत्म नहीं होती तो भी उसकी जनसंख्या उस स्तर तक गिर जाती है जहॉ से अपना पुनरूद्धार करने में अक्षम होती है।

6. **शिकार** : जन्तुओं का शिकार आमतौर से दॉत सींग, खाल, कस्तूरी आदि के लिए किया जाता है। अंधाधुंध शिकार के कारण देश में जानवरों की बहुत सी जातियॉ विलुप्ति के कगार पर पहुँच चुकी हैं। उदाहरणार्थ असम राज्य में एक सींग वाले गैण्डे की जनसंख्या में अभूतपूर्व गिरावट दर्ज की गई है क्योकि इसका शिकार इसके सींग के लिए किया जाता है। जिसका उपयोग कामोत्तेजक दवाओं के निर्माण में होता है इस प्रकार पूर्वोत्तर राज्यों में विशेषकर मणिपुर में चीरू नामक जानवर का शिकार उसकी खाल के लिए किया जाता है जिससे शाहतूस शाल का निर्माण होता है।

7. **वनविनाश** : विकास कार्यों तथा कृषि के विस्तार के कारण ऊष्णकटिबन्धीय देशों में जंगलों को बड़े पैमाने पर नष्ट किया गया है जिसके परिणामस्वरूप ऊष्णकटिबन्धीय वनों में जैव विविधता का क्षरण हुआ है। ऊष्णकटिबन्धीय देशों में आदिवासियों द्वारा की जाने वाली **झूम कृषि** (स्थानान्तरी कृषि) भी जैविकता क्षरण का एक प्रमुख कारण राही है। भारत के आदिवासी बहुलपूर्वोत्तर राज्यों में झूम कृषि के कारण वनों के क्षेत्रफल में अभूतपूर्व गिरावट दर्ज की गई है।

8. **अति—चराई** : शुष्क तथा अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में चराई जैव विविधता क्षरण का एक प्रमुख कारण है। भेडों, बकरियों तथा अन्य शाकभक्षी पशुओं द्वारा चराई के कारण पौधों की प्रजातिओं को नुकसान पहुँचता है। अति चराई के कारण पौधों का प्रकाश संश्लेषण वाला भाग नष्ट हो जाता है जिससे पौधों की मृत्यु हो जाती है। बहुत सी कमजोर प्रजातियाँ शाक—भक्षी पशुओं द्वारा कुचल दी जाती है। अति व लगातार चराई कई पौधों की प्रजातियों को समुदाय नष्ट कर देती है।

9. **बीमारी** : मानव गतिविधियाँ प्रायः वन्य जीवों की प्रजातियों में बीमारियों को बढ़ावा देती हैं जब कोई जानवर एक कृत्रिम संरक्षित क्षेत्र तक ही सीमित होता है तब उसमें बीमारी के प्रकोप की सम्भावना ज्यादा होती है। मनुष्य की कैद में वन्य जीव दबाव के कारण बीमारियों के प्रति अति संवेदनशील हो जाते हैं।

10. **चिड़ियाघर तथा शोध हेतु प्रजातियों का उपयोग** : चिकित्सा, शोध तथा चिड़ियाघर के लिए जानवरों को पकड़ना उसकी प्रजाति के लिए खतरनाक साबित होता है क्योकि इससे इनकी जनसंख्या में गिरावट होने की संभावना रहती है। जिससे ये जानवर विलुप्त के कगार पर पहुँच सकते हैं। चिकित्सा शोध एक महत्वपूर्ण क्रिया है लेकिन यह संकटग्रस्त जंगली प्राइमेट्स जैसे गोरिल्ला, चिम्पांजी तथा ओरांगुटान के लिए खतरनाक है।

11. **नाशीजीवों एवं परभक्षियों का नियंत्रण** : फसलों तथा पशुओं को नाशीजीवों (Pests) तथा परभक्षियों से सुरक्षा ने भी बहुत से प्रजातिओं को विलुप्ति के कगार पर पहुॅचा दिया है। विष के इस्तेमाल से एक विशेष प्रजाति कों नष्ट करने के प्रयास में कभी—कभी उस प्रजाति के परभक्षी भी विष के शिकार हो जाते है जिससे

पारिस्थितिक तन्त्र में खाद्य शृंखला अव्यवस्थित हो जाती है और नियंत्रित प्रजाति नाशीजीव का रूप धारण कर जैव विविधता को क्षति पहुँचाती है।

12. **प्रतियोगी अथवा परभक्षी प्रजातियों का प्रवेश** : प्रवेश कराई गई प्रजाति दूसरी प्रजातियों को उनके शिकार या भोजन के लिए प्रयासवश उनके आवास को नष्ट कर पारिस्थितिक संतुलन को **अव्यवस्थित** कर उन्हें प्रभावित कर सकती है। उदाहरणस्वरूप हवाई द्वीप में 1883 में गन्ने की फसल को बर्बाद कर रहे चूहों के नियंत्रण हेतु नेवलों को जानबूझ कर प्रवेश कराया गया था जिसके फलस्वरूप बहुत सी अन्य स्थानीय प्रजातियॉ भी प्रभावित हुई थी।

20.3.3: जैव विविधता संरक्षण अधिनियम, 2002 व जैव विविधता नियम, 2004

(Biodiversity conservation act -2002 & Biodiversity rule- 2004)

यह अधिनियम जैव विविधता संरक्षण, जैव ससांधनों के सतत् उपयोग और इनके उपयोग से मिलने वाले लाभों के उचित व तुल्य बँटवारे से जुड़ा हुआ है। यह अधिनियम पूरे भारत में लागू होता है। इसके महत्वपूर्ण बिन्दु निम्नवत है : **''जैव विविधता''** का मतलब जीव–जन्तु और उनकी परिस्थितिकीय व्यवस्था की विविधता व उनकी परिवर्तनशीलता से है। इसमें प्रजातियों की आंतरिक विविधता, विभिन्न प्रजातियों के बीच की विविधता और उनकी पारिस्थितिकी विविधता शामिल हैं।

''जैव संसाधनों'' का अभिप्राय है वनस्पति, जानवर व सूक्ष्म–जीव, उनके अलग–अलग अंग की आंतरिक अनुवंशिकी बनावट व इस बनावट की प्रक्रिया से निकले उत्पाद जिनका उपयोग किया जा सकता है। जैव संसाधनों की परिभाषा में मनुष्यों की अनुवांशिकी सामग्री शामिल नहीं है।

''जैव सर्वेक्षण व जैव उपयोग'' का अभिप्राय प्रजातियों उप–प्रजातियों, अनुवांशिकी सामग्री और जैव संसाधनों के हिस्सो और तत्वों को इकट्ठा करने से है। इसमें इन संसाधनों और उनके विशेष लक्षणों व विशेषताओं की सूची बनाना, उनकी विस्तृत जानकारी देना तथा संसाधनों के लिए किसी जन्तु पर उनके प्रभाव करना शामिल है।

''स्थानीय संस्थाओं'' का आशय पंचायतें व नगर पालिकाएँ से है तथा पंचायत या नगरपालिका की अनुपस्थिति में कोई भी संस्था जो लोगों ने अपने स्तर पर बनाई हो एवं वह संस्था किसी अधिनियम के अंतर्गत मान्य हो तो उसे ''स्थानीय सस्था'' माना जा सकता है।

निर्णय लेने वाली संस्थाएँ तीन स्तर पर बनाई जाएंगी– राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण, राज्य जैव विविधता मण्डल व ग्राम स्तर पर जैव विविधता प्रबंधक समिति। प्रत्येक का विस्तृत वर्णन इस प्रकार से है :–

(1) **राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण (National Biodiversity Authority, NBA, खण्ड 8)-** केन्द्र सरकार ने सन 2009 में चेन्नई में एक राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण (National Biodiversity Authority, NBA) स्थापित किया जिसके निम्नलिखित सदस्य होते हैं :

(i) **अध्यक्ष–** एक ऐसा व्यक्ति जो प्रतिष्ठित होने के साथ–साथ जैवविविधता के विषय पर उचित जानकारी व अनुभव रखता /रखती हो ।

(ii) **तीन सदस्य–** जो जनजाति व पर्यावरण के मुद्दों से संबंधित मंत्रालयों के पदों पर हो। उनमें से एक जनजातीय मामलों के मंत्रालय का प्रतिनिधित्व करेगा व दो पर्यावरण एवं वन मत्रांलय का प्रतिनिधित्व करेंगे, जिनमें से एक वनों का निदेशक या संयुक्त निदेशक होना चाहिए ।

(iii) **सात ऐसे सदस्य** जो केन्द्रीय सरकार के उन मत्रांलयों के पदों पर हों जहाँ कृषि अनुसंधान व शिक्षा, जैव प्रौधोगिकी, महासागर विकास, कृषि व सहयोग, भारतीय औषध पद्धतियों व होम्योपैथी, विज्ञान व तकनीकि, विज्ञान व औद्योगिक अनुसंधान के मुद्दों से संबंधित हो।

(iv) और **5 गैर सरकारी सदस्य–** राष्ट्रीय प्रधिकरण एक ऐसी समिति भी बना सकता है जो कृषि जैव विविधता और कृषि फसलों की जगंली प्रजातियों या ऐसे अन्य मुद्दों पर खास ध्यान दें (खण्ड 13)

राष्ट्रीय प्राधिकरण के मुख्य कार्य (खण्ड 18)

(i) भारतीय जैव विविधता तक विदेशी पहुँच को मान्यता देना, नियंत्रित करना, या रोकना। जैव विविधता से जुड़ी जानकारी के पेटेन्ट अधिकारों के आवेदनो का निरीक्षण करना व यह सुनिश्चित करना कि जैव विविधता व उससे जुड़े पारंपरिक ज्ञान से मिलने वाले लाभ सभी संबंधित साझेदारों को तुल्य रूप में बाँटे जा सके।

(ii) भारत से बाहर उन पेटेन्ट को चुनौती देना जिन्हें राष्ट्रीय प्राधिकरण की स्वीकृति प्राप्त नही है ।

(iii) अगर स्वीकृति की शर्तें पूरी नहीं की जा रही हैं या प्राकृतिक संसाधनों को खतरा पहुँच रहा है, तो स्वीकृति को रद्द करना ।

(iv) केन्द्रीय सरकार को जैव विविधता संरक्षण व सतत उपयोग और तुल्य लाभ वितरण के मुद्दों पर सलाह देना।

(v) जैव विविधता के विभिन्न पहलुओं पर जानकारी को इकट्ठा कर उसे मुद्रित करवाना।

(vi) राज्यों के जैव विविधता बोर्ड की गतिविधियो का संचालन करवाना और उन्हें तकनीकी सहयोग देना ।

(vii) विरासती जैव विविध क्षेत्रों (बायोडायवर्सिटी हैरिटेज साईट्स) के विषय में राज्य सरकारों को सलाह देना।

(2) राज्य जैवविविधता मण्डल (State Biodiversity Board, SBB, खण्ड 22)

राज्य सरकार राज्य जैव विविधता बोर्ड स्थापित करेगी जिसके निम्नलिखित सदस्य होगे :

(i) एक अध्यक्ष

(ii) राज्य सरकारी विभागों के पदों से अधिकतम 5 सदस्य ।

(iii) संबंधित विषयों के विशेषज्ञों में से नियुक्त किए गए अधिकतम 5 सदस्य ।

राज्य बोर्ड के मुख्य कार्य (खण्ड 23)

(i) राज्य सरकार को जैवविविधता संरक्षण व सततता और तुल्य लाभ वितरण के विषय में सलाह देना ।

(ii) भारतीय आवेदकों द्वारा किसी भी जैविक संसाधन के बाजारीकृत उपयोग या जैव सर्वेक्षण व जैव उपयोग के आवेदन को स्वीकृति या अस्वीकृति देना ।

(iii) अन्य आवश्यक कार्य करना।

(3) जैवविविधता प्रबंधक समिति (Biodiversity Management Committee, BMC) (खण्ड 41)

(i) प्रत्येक स्थानीय संस्था द्वारा एक जैवविविधता प्रबन्धक समिति बनाना अनिवार्य होगा़ जो अपने क्षेत्र में जैवविविधता के संरक्षण, सतत् उपयोग व दस्तावेजीकरण के काम को बढावा देगी। इसमें वन्यजीवों के प्राकृतिक आवास स्थलों की सुरक्षा, कृषि जैव विविधता व सूक्ष्म जन्तुओं का संरक्षण, जैवविविधता से संबधित ज्ञान व उसके इतिहास का विवरण तैयार करना भी शामिल है।

(ii) जैवविविधता समिति में 7 सदस्य होंगे, जिसमें 1/3 महिलाएँ होगी और 18 प्रतिशत अनुसूचित जाति व जनजाति के प्रतिनिधि होंगे।

(iii) यह समिति किसी भी व्यक्ति से फीस ले सकती है जो व्यापार हेतु – समिति के कार्य क्षेत्र में आने वाले जैविक संसाधनों का एकत्रीकरण या उपयोग करता है ।

(iv) राष्ट्रीय व राज्य प्राधिकरण को किसी भी संसाधन के उपयोग का निर्णय लेने से पहले उस क्षेत्र की जैव विविधता समिति की सलाह लेना अनिवार्य होगा।

नोट–ऊपर दिए गए राष्ट्रीय, राज्य व स्थानीय स्तर पर एक–एक जैवविविधता कोष बनाने का प्रावधान है इसके लिए विभिन्न स्त्रोतों से पैसे इकट्ठे किए जा सकते हैं जिन्हें अधिनियम के अन्तर्गत दी गई गतिविधियों पर खर्च किया जा सकता है – जिसमें स्थानीय लोगो के बीच तुल्य रूप से लाभ वितरण को बढावा देना भी शामिल है।

4 : निम्नलिखित श्रेणी के ब्यक्तियों को भारत में पाए जाने वाले जैविक संसाधनों या उनसे सम्बंधित जानकारी प्राप्त करने से पहले **राष्ट्रीय जैवविविधता प्राधिकरण की स्वीकृति** लेनी होगी, चाहे वह अध्ययन के लिए हो या व्यापार के लिए (खण्ड 3)।

(i) जो भारतीय नागरिक न हो ।

(ii) जो आयकर अधिनियम 1961 के खण्ड 2 के उपवाक्य 30 में पारिभाषित प्रवासी भारतीय हो ।

(iii) ऐसी कम्पनी, एसोसिएशन या संस्था जो भारत में पंजीकृत न हो या भारत में पंजीकृत हो पर उसके प्रबन्धन या उसकी शेयर पूंजी में गैर भा़रतीयों की सहभागिता हैं।

(iv) राष्ट्रीय प्राधिकरण की स्वीकृति के विना ऊपर दी गई सूची में वर्णित कोई भी व्यक्ति भारत में पाये जाने वाले या भारत से प्राप्त जैविक संसाधनों पर किए गए अध्ययन के **परिणाम** देश से बाहर नहीं ले जा सकता (खण्ड 4)

(v) जैव – संसाधनों को प्राप्त करने के आवेदनों को निम्नलिखित कारणों से नांमजूर किया जा सकता है – जब वह जैव विविधता के लिए खतरा पैदा करते हों, स्थानीय लोगों की आमदनी के लिए खतरा पैदा करते हों या जब वह किसी अन्य कारण से राष्ट्रीय हित के लिए हानिकारक हों ।

(v) ऊपर दिया गया राष्ट्रीय प्राधिकरण की स्वीकृति का नियम ऐसे सहयोगी अनुसंधान पर लागू नहीं है जो भारत और अन्य देश के सरकारों द्वारा प्रयोजित सस्थानों बीच किए गए हों । ऐसे सहयोगी अनुसंधान का केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत होना है व उन्हे केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए दिशानिर्देशों का पालन करना आवश्यक है (खण्ड 5)

(i) कई साधारण रूप से बेचे जाने वाले जैव संसाधनों को केन्द्र सरकार इन प्रावधानों से छूट दे सकती है। जैसे– कुछ फसलें, जो आम तौर पर निर्यात की जाती हैं । इन ससांधनों का एक सरकारी सूचना पत्र प्रकाशित करना है। साथ ही, इन संसाधनों को आयात करने वालों को यह घोषित करना होगा कि वे इनका उपयोग अनुसंधान या उत्पादन के लिए नहीं करेंगें।

5: भारतीय लोगों द्वारा जैव संसाधनो के उपयोग को नियंत्रित करने के नियम

(i) भारतीय नागरिक या कम्पनियां, या संगठन, जो भारत में पंजीकृत हैं और जिसमें कोई विदेशी सहभागी न हो, राज्य जैवविविधता प्राधिकरण को सूचित करने के बाद किसी भी जैव संसाधन को व्यापारिक प्रयोग, जैव सर्वेक्षण या जैव उपयोग के लिए प्राप्त कर सकते हैं (खण्ड –7)।

(ii) स्थानीय संस्थाओ से विचार – विमर्श और स्वयं जाँच करने के बाद, राज्य प्राधिकरण ऐसे किसी भी कार्यक्रम पर रोक लगा सकता है, यदि उसे लगता है कि उस कार्यक्रम से जैव विविधता सरंक्षण, सतत् उपयोग या तुल्य लाभ विवरण को खतरा है । (खण्ड –24)।

(iii) यह प्रावधान स्थानीय लोगों या समुदायों पर लागू नहीं होंगे जैसे कि जैविक संसाधनों के उत्पादक, वैध और हकीम, जो चिकित्सा के पारंपरिक तरीकों का अभ्यास करते हों (खण्ड 7)।

6: **बौद्धिक संपदा अधिकार के सम्बन्ध में** राष्ट्रीय जैव विविधता प्राधिकरण की स्वीकृति के बिना भारत के बाहर, कोई भी व्यक्ति ऐसे बौद्धिक संपदा अधिकार के लिए आवेदन नहीं कर सकता है, जिसे भारत में पाये जाने वाले जैव संसाधन के अध्ययन / जानकारी के आधार पर आविष्कार किया गया हो (खण्ड 6 (1)।

(ii) आवेदन प्राप्त करने पर राष्ट्रीय प्राधिकरण अपने स्तर पर जाँच करता है और जरुरत पड़ने पर एक विशेषज्ञ समिति स्थापित कर सकता है। प्राधिकरण इस समिति की सलाह पर आवेदन को स्वीकृत या अस्वीकृत कर सकता है। किसी भी आवेदन को स्वीकृति देने के बाद उसके विषय में आम सूचना जारी करना राष्ट्रीय प्राधिकरण के लिए अनिवार्य है। (खण्ड19 (3) व (4) और 20 (4) ।

7 : बौद्धिक संपदा से प्राप्त लाभ के सम्बन्ध मे

(i) जब भी जैव संसाधन के उपयोग या **बौद्धिक संपदा अधिकार को स्वीकृति** दी जाएगी तब राज्य जैव विविधता बोर्ड व राष्ट्रीय प्राधिकरण ये सुनिश्चित करेंगे कि उनसे होने वाले लाभ को तुल्य रुप से बाँटा जायगा। लाभ को आवेदक व लाभ के दावेदारों जैसे कि वे समुदाय व व्यक्ति जो इन जैव संसाधनो का संरक्षण करते आए हैं और जिन्होने इन संसाधनों से संबंधित जानकारी प्रणालियों व नवीनीकरण की रचना

की है के बीच बाँटा जाएगा। आवेदक, संबधित स्थानीय संस्थाओं व लाभ के दावेदारों के बीच आपसी समझौते से इस लाभ वितरण की शर्तें तय की जाएँगी (खण्ड 21 (1) ।

(ii) लाभ वितरण निम्नलिखित तरीको से हो सकते है। (खण्ड 21 (2)।

(अ) बौद्धिक संपदा अधिकार के आवेदक व राष्ट्रीय प्राधिकरण के बीच संयुक्त अधिकार या आवेदक व लाभ के दावेदारों के बीच संयुक्त अधिकार।

(ब) लाभ के दावेदारों को तकनीकी हस्तांतरण ।

(स) जैव संसाधनो के अध्ययन व विकास में भारतीय वैज्ञानिकों लाभ के दावेदारों व स्थानीय लोगो को जोड़ना।

(द) लाभ के दावेदारों को आर्थिक लाभ उपलब्ध कराना तथा उनकी मदद के लिए उद्यम पूँजी कोष की स्थापना करना।

8: पारंपरिक ज्ञान की सुरक्षा के सम्बन्ध मे

अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार की जिम्मेदारी है कि स्थानीय लोगों की जैवविविधता से संबंधित जानकारी को सम्मान मिले व उसकी सुरक्षा हो इसके राष्ट्रीय प्राधिकरण की सलाह से स्थानीय, राज्य या राष्ट्र स्तर पर लिये पारंपरिक ज्ञान का पंजीकरण किया जा सकता है।(खण्ड36)(5)

9: जैवविविधता संरक्षण कार्यों के सम्बन्ध में (i) अधिनियम में कई प्रकार के संरक्षण कार्यो के प्रावधान हैं जिन्हें केन्द्रीय सरकार की जिम्मेदारियाँ बताया गया है।

(अ) राष्ट्रीय रणनीतियाँ, योजनाएँ व कार्यक्रम तैयार करना जिससे जैवविविधता संरक्षण संवर्धन व उसके सत्त उपयोग का कार्य किया जाए। इसमें जैवविविधता संसाधनो से परिपूर्ण क्षेत्रो की पहचान व उनका निरीक्षण करना, संसाधनो का उनके क्षेत्रों में या बाहर संरक्षण करना व जैवविविधता के विषय में जागृति बढाने के लिए अध्ययन प्रशिक्षण व शिक्षा को प्रोत्साहन देना शामिल है। (खण्ड 36 (1)।

(ब) अगर किसी क्षेत्र में जैवविविधता को खतरा है तो राज्य सरकार को उचित कार्यवाही करने के दिशानिर्देश जारी करना (खण्ड 36(2)।

(स) ऐसी परियोजनाओं के परिस्थितिकीय प्रभावों का मूल्यांकन करना जिनका जैवविविधता पर दुष्प्रभाव पड़ सकता है। (खण्ड 36 (4)(1)। अभी तक नियमों में इस प्रावधान को लागू करने की प्रक्रिया के लिए कोई प्रबन्ध नही किया गया है।

(द) ऐसी प्रजातियाँ जो लुप्त होने की कगार पर है, उन्हें **संकटग्रस्त प्रजाति** घोषित करना और उनके एकत्रीकरण को नियंत्रित या प्रतिबंधित करना तथा इन प्रजातियों की पुनः स्थापना व सुरक्षा के लिए कदम उठाना यह सब संबंधित राज्य सरकार के साथ विचार विमर्श में किया जाए (खण्ड 38)।

(य) राष्ट्रीय प्राधिकरण की सलाह से कुछ संस्थाओं को अलग अलग श्रेणी के जैव संसाधनों की **संग्राहक संस्था** घोषित करना यह संग्राहक संस्थाएँ जैविक सामग्री को सुरक्षित रखेंगी । यदि कोई व्यक्ति नई

प्रजाति नस्ल इत्यादि की खोज करें तो वह संग्राहक संस्था को अवश्य सूचित करें और उसका नमूना वहाँ जमा करें (खण्ड 39)।

10: जैवविविधता विरासतीय क्षेत्र के सम्बन्ध में

(i) राज्य सरकार स्थानीय संस्थानों की सलाह से जैवविविधता की दृष्टि से महत्वपूर्ण क्षेत्रों को **विरासती जैवविविध क्षेत्र** (Biodiversity heritage site) घोषित कर सकती है। केन्द्रीय सरकार की सलाह से राज्य सरकार ऐसे क्षेत्रों के संरक्षण व प्रबन्धन के लिए नियम बनाएगी और जिन लोगों पर इस कारण आर्थिक प्रभाव पडा हैं उनके लिए क्षतिपूर्ति व पुनर्वास का विनियोजन करेगी (खण्ड 37)।

(ii) यदि राष्ट्रीय व राज्य जैवविविधता बोर्ड के बीच विवाद खडा होता है तो वे केन्द्रीय सरकार में पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के सचिव को प्रबोधित, **फार्म 5** के जरिए अपील कर सकते हैं।

(iii) किन्ही दो राज्य जैवविविधता बोर्डो के बीच विवाद होने पर केन्द्रीय सरकार मामला राष्ट्रीय प्राधिकरण को सौंप देगी (खण्ड50)।

(iv) अगर कोई व्यक्ति राष्ट्रीय प्राधिकरण या राज्य बोर्ड के फैसले से असंतुष्ट है तो वह निर्णय प्राप्त होने के 30 दिन के अंदर उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। (खण्ड 52)। जैवविविधता प्रबन्धक कमेटी के संदर्भ में ऐसा कोई प्रावधान नही हैं ।

20.3.4 जलवायु परिवर्तन एवं वैश्विक ऊष्णता – अर्थ एवं अवधारणा

(Climate Change & Global warming-meaning & concept)

मानव के अनेक क्रियाकलापों एवं कुछ प्राकृतिक कियाओं के फलस्वरुप प्रायः ग्रीन हाउस गैसें (CO_2, H_2O, CH_4) इत्यादि उत्पन्न होती है। ये वायुमंडल मे एकत्र होकर विशाल परत बनाती है जो पृथ्वी की गर्मी को वायुमंडल में नहीं जाने देती।

(अ) वैश्विक ऊष्णता के मुख्य कारण :

(i) वृक्षों का लगातार कटना, फलतः कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा का बढना चूकि केवल हरे पौधे ही कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा का नियंत्रण प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा कर सकते हैं।

(ii) डीजल, पेट्रोल वाहनो का बढता उपयोग, कृषि फसलों के अवशेषों को बड़े स्तर पर जलाना एवं ठोस अपशिष्टों (नगरीय कचरा, अस्पताल कचरा) को जलाना फलतः कार्बन डाइ ऑक्साइड का ज्यादा उत्सर्जन

(iii) बढ़ता औद्योगिकीकरण फलतः जीवाश्म ईंधनों (कोयला, प्राकतिक तेल इत्यादि) का बढता उपयोग।

(iv) अनेक प्रक्रियों जैसे पदार्थों का सड़ना, जीव जंतुओं के मृत्यु पश्चात् उनके अपघटन की क्रिया से, खेतों में होने वाली जैव प्रक्रियाओं से, कूडे कचरे के ढेर में होने वाली रासायनिक क्रियाओं से मीथेन (CH_4) का निकलना जो कि ग्लोबल वार्मिंग उत्पन्न करने में अहम भूमिका निभाती है।

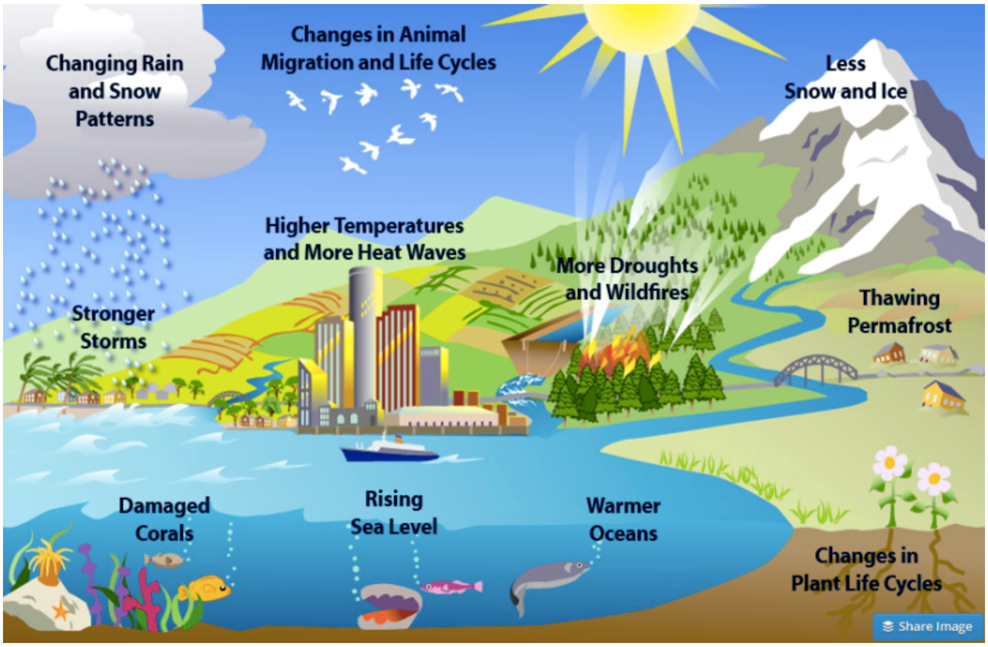

चित्र 3.3: वैश्विक ऊष्णता व उसके दुष्प्रभाव

(ब) वैश्विक ऊष्णता के परिणाम

1. पृथ्वी के तापमान बढने से ध्रुवों पर एकत्रित बर्फ पिघलेगी और समुद्र का जल स्तर बढेगा जिसे समुद्र तटीय देशों और उसकी आबादी को खतरा होगा जैसे मालद्वीप, मिश्र का नील डेल्टा, बांग्लादेश का गंगा–ब्रह्मपुत्र डेल्टा, एवं अनेक छोटे द्वीप जलमग्न हो जायेंगे।
2. तापमान में वृद्धि से खेतिहर पैदावार कम होगी।
3. वैश्विक उष्णता एवं जलवायु परिवर्तन से मैंदानी क्षेत्रों में सूखा व बाढ आ सकती है। इस कारण से पौधों, खेतिहर फसलों कीटो, पालतू पशुओं ओर सूक्ष्म जीवों की प्रजातियाँ बदल सकती हैं।

(स) वैश्विक ऊष्णता से बचाव

(i) जीवाश्म ईंधनों का न्यूनतम उपयोग तथा उनका पूर्ण दहन सुनिश्चित किया जाना।

(ii) गैर–परंपरागत ऊर्जा जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा,सागरीय ऊर्जा, बायोमास ऊर्जा के उपयोग को बढ़ावा दिया जाना।

(ii) ठोस अपशिष्ट को जलाने के वजाय उसकी कम्पोस्टिंग करने को बढ़ावा देना।

20.3.5 जलवायु परिवर्तन का वैज्ञानिक, तकनीकी, सामाजिक एवं आर्थिक पक्ष (Scientific, technical, social & ecnomical view of climate change)

जलवायु परिवर्तन वर्तमान की सबसे गम्भीर पर्यावरणीय समस्या है। जलवायु परिवर्तन के **5 प्रमुख लक्षण** हैं : कार्बन डाई आक्साइड की विश्वव्यापी सान्द्रता में वृद्धि, विश्वव्यापी सतह तापमान में वृद्धि, उत्तरी ध्रुवीय (आर्कटिक) समुद्र की बर्फ मे कमी, स्थलीय बर्फ में कमी तथा समुद्र के जल स्तर में वृद्धि। कार्बन डाई आक्साइड ऊर्जा ग्रहण करनें वाली एक ग्रीन हाउस गैस है जो **मानवीय कारणों** जैसे ज़ंगलो की कटाई और जीवाश्म ईंधन के जलने और प्राकृतिक कारणों जैसे श्वसन और ज्वालामुखी के विस्फोट से वातावरण में आती है। वर्ष 2005 – 2010 में **विश्वव्यापी सतही** तापमान सर्वाधिक दर्ज किए गए। **आर्कटिक समुद्र** की बर्फ मात्रा में सन् 1974 की तुलना में सन् 2000 में 11.5% की कमीं पायी जाती। **अंटार्कटिका और ग्रीनलैण्ड** दोनों जगह स्थलीय हिम की परत पिघल रही है। **अंटार्कटिका** महाद्वीप की बर्फ में वर्ष 2002 से प्रतिवर्ष 100 घन किलोमीटर की कमी आ रही है। इसी प्रकार सन् 1970 से 1990 के बीच **समुद्र स्तर** 1.70 मि0मी0 प्रतिवर्ष की दर से बढ़ रहा था, जबकी 1994 के बाद से यह वृद्धि दर 3.19 मि0मी0 प्रतिवर्ष पायी गयी। इस प्रकार से जलवायु परिवर्तन के पीछे **वैज्ञानिक पक्ष** सुस्पष्ट है कि उक्त घटनाएं पर्यावरण के प्रति मानव के गैर **जिम्मेदाराना** व्यवहार का परिणाम है ।

चूँकि जलवायु परिवर्तन का मुख्य कारण हमारे विभिन्न गतिविधियों जैसे दहन, परिवहन, औद्योगिकीकरण इत्यादि से उत्सर्जित कार्बन डाई आक्साइड है निश्चय ही यदि दहन के लिए उत्तम किस्म के चूल्हों, परिवहन के लिए उच्च दक्षता के इंजनों एवं औद्योगिकीकरण में भी उच्च दक्षता की मशीनों का प्रयोग किया जाय तो कार्बन उत्सर्जन मे कमी लाई जा सकती है। इन सभी संयंत्रों व मशीनों की दक्षता केवल उनकी **तकनीकी में परिवर्तन** कर प्राप्त किया जा सकती है। अस्तु यह निष्कर्षित किया जा सकता है पुरानी व अविकसित तकनीकि भी जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार है। कार्बन उत्सर्जन के पीछे **सामाजिक पक्ष** यह है कि यदि पर्यावरण के प्रति जनजागरूकता उत्पन्न की जाये तो मानव अपनी जीवन शैली परिवर्तित कर कार्बन उत्सर्जन में कमी लाकर जलवायु परिवर्तन की चुनौती को कम कर सकता है। जीवन शैली बदलाव का मुख्य सम्बन्ध सतत् विकास से है। हमको दोहन करने की प्रवृत्ति के स्थान पर सदुपयोग करने की प्रवृत्ति अपनानी होगी।

कार्बनडाई ऑक्साइड के सम्बन्ध में **आर्थिक पक्ष** को नकारा नही जा सकता। अर्थ की प्रधानता के कारण मानव पर्यावरण का उपयोग के बजाय दोहन कर रहा है जैसे हम अपने प्राकृतिक संसाधनों जैसे जीवाश्म ईंधन, खनिज, जल, वायु, जंगल इत्यादि का उपयोग के बजाय दोहन कर रहे हैं। जिस गति से हम वृक्षारोपण कर रहे हैं उससे कई गुना तेजी से वनोन्मूलन कर रहे हैं जिससे कार्बन अवशोषकों (वृक्षों) की संख्या लगातार कम हो रही है फलतः कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की सान्द्रता वातावरण में बढ़ रही है। इससे जलवायु परिवर्तन और वैश्विक ऊष्णता जैसे संकट आज हमारे सामने चुनौती बनकर खड़े हुए हैं।

20.3.6.1 जलवायु परिवर्तन, गरीबी उन्मूलन, आजीविका, खाद्य सुरक्षा, वन एवं जैव विविधता (Climate change, poverty eradication, livelihood, food security, forest & biodiversity)

जलवायु परिवर्तन का मूल कारण **कार्बन डाई आक्साइड** का अधिक मात्रा में वातावरण मे उत्सर्जन होना है और यह उत्सर्जन मुख्य रूप से हमारी परिवर्तित जीवन शैली, उपभोक्तावादी प्रवृत्ति, अन्धाधुन्ध शहरीकरण व औद्योगीकरण इत्यादि पर निर्भर है। मशीनों पर हमारी निर्भरता भी कार्बन उत्सर्जन को बढ़ावा देती है। अतः यदि हम मशीनो पर अपनी निर्भरता को कम करके आत्म निर्भर होने की चेष्टा करे तथा उपभोक्ता वादी व अति आरामदेह जीवनशैली का त्याग करे तो कार्बन उत्सर्जन कम होगा फलतः जलवायु परिवर्तन (वैश्विक ऊष्णता) की समस्या से निजात पाया जा सकता है और यह कदम **गरीबी उन्मूलन** में भी अहम भूमिका निभाएगा।

मशीनीकरण कम होने से **आजीवका** के साधनों में भी बढ़ोतरी होगी फलतः आजीविका की समस्या का निराकरण हो सकेगा।

जैव विविधता पर जलवायु परिवर्तन का गहरा प्रभाव पड़ता है। जलवायु परिवर्तन से सूखा, मरूस्थलीयकरण आदि आपदाओं में वृद्धि होती है फलतः जैव विविधता का ह्रास होता है। पूरी दुनिया में 50000 ज्ञात और प्रमाणित खाद्य पौधे हैं इनमें केवल 15 किस्मे ही दुनिया को 90% भोजन देती हैं। दुनियाभर में अगर पौधों की जैविक हानि को कम नहीं किया गया तो अनुमानों के अनुसार वर्ष 2025 तक पौधों की कम से कम 60,000 प्रजातियाँ गायब हो जाएँगी यानी कुल संख्या का 25% फलतः खाद्य सुरक्षा पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा? भावी खाद्य आवयकताओं की पूर्ति के लिए जैव विविधता का संरक्षण तथा फसलीय पौधों के जंगलीय समतुल्यों का यथास्थल संरक्षण करना है। चूँकि फसलों में वांछित गुण लाने का सबसे प्रभावी उपाय जगंली किस्मों मे पायी जाने वाली विशेषताओं का उपयोग करना है। निर्जन भूमि के सिमटाव के साथ ये प्रजातियाँ या किस्में तेजी से विलुप्त हो रही हैं। यदि ये विलुप्त हुई तो दुबारा आवश्यकता होने पर भी उनकी वांछित विशेषताओं को पैदा नही किया जा सकता। राष्ट्रीय पार्कों और अभ्यारण्यों में वन जंगली पौधों के संरक्षण पर ही दीर्घकालीन खाद्य सुरक्षा का दरोमदार है।

20.3.6.2 ऊर्जा के गैर पारम्परिक स्रोत (Non-conventional energy sources)

अ. पवन ऊर्जा– हवा तथा पानी में बहाव की धाराएँ (currents) उत्पन्न करने में 10×10^{21} जूल **सौर ऊर्जा**खर्च होती है और देश के कई भागों में बहुत तेज हवाएँ चलती हैं। इनके पथ में बड़े–बड़े पंखे लगा देने पर ये घूमते हैं और अपनी गति से टरबाइन इत्यादि को घुमा देते हैं। इस प्रकार **पवन चक्कियों** का निर्माण होता है। जिनसे बहुत से काम लिऐ जाते हैं। हॅालैण्ड पवन चक्कियों के लिए प्रसिद्ध है। भारत में समुद्र तटीय राज्यो जैसे गुजरात में पवन ऊर्जा पर्याप्त मात्रा में पैदा की जा रही है। संक्षेप में जहॉ हवा चलती रहती हैं। उन क्षेत्रों के लिए यह ऊर्जा का एक सस्ता तथा प्रदूषण मुक्त साधन है।

ब. सौर ऊर्जा– सूर्य से पृथ्वी प्रतिदिन 75×10^{14} किलोवाट ऊर्जा प्राप्त करती है। इसका 0.1 प्रतिशत ही विश्व की सम्पूर्ण ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काफी है। भारत में अधिकांश भागों में तो वर्ष भर अच्छी धूप आती है। यदि हर एक घर की छत के एक भाग में सोलर पैनल लगा दिए जाएँ तो उस घर की ऊर्जा की आवश्यकता उसी से आसानी से पूरी की जा सकती है।

सौर ऊर्जा का उपयोग प्रकाश व यांत्रिक ऊर्जा के अतिरिक्त खाना पकाने घर को गर्म रखने आदि में सेल किया जा सकता है। सिलिकॉन के बने सोलर सैल सूर्य की गर्मी से सीधे बिजली बना सकते हैं। सोलर सैलों के पैनल मँहगें तो पड़ते हैं, परन्तु यदि एक बार लगा दिए जाएँ तो बिजली एवं उष्मा की पूर्ति बिना किसी अतिरिक्त खर्च के होती रहती है। कई बड़े भवनों की छतों वर्तमान में ये प्रायः लगाए जा रहे हैं तथा उन विशाल भवनों की बिजली तथा गरम पानी इत्यादि की जरूरतों को वे भली–भाँति पूरा कर रहे हैं।

स. सागरीय ऊर्जा–(ज्वार भाटे से ऊर्जा)– सूर्य और चन्द्रमा के गुरूत्वाकर्षण के कारण किसी एक क्षेत्र के समुद्री सतह में उतार चढाव आता रहता है जिसे हम ज्वार भाटा कहते हैं। जब पानी का स्तर बढता है तो उसे बड़े–बड़े तालाबों की ओर मोड़कर व बहाकर उसके प्रवाह से टरबाइन चलाकर बिजली उत्पन्न की जा सकती है। ऊर्जा का यह एक सस्ता, साफ और असीमित स्रोत सिद्ध होगा। वर्तमान में इसकी क्षमता लगभग 2×10^{18} जूल प्रतिवर्ष है।

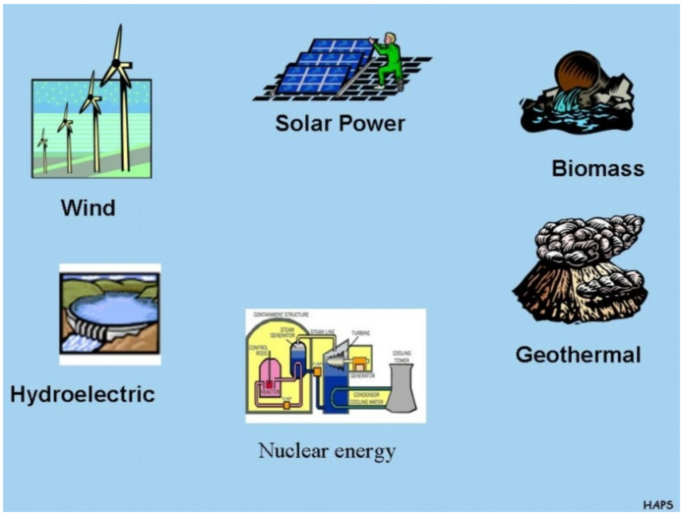

चित्र 3.4: गैर पारम्परिक ऊर्जा के विभिन्न प्रकार के स्त्रोत

द. परमाणु ऊर्जा– यूरेनियम ($_{92}U^{235}$) कोयले के उतने ही भार की अपेक्षा 30 लाख गुना ऊर्जा देता है तथा हीलियम के उतने ही भार के नाभिकीय विखण्डन से कोयले की अपेक्षा 245 लाख गुना अधिक उर्जा प्राप्त की जा सकती है। हालांकि परमाणु ऊर्जा बहुत अधिक महँगी पडती है क्योंकि रियक्टरों की संरचना में सुरक्षा नियमों का सख्ती से पालन करना अनिवार्य होता है। इसके अतिक्ति रेडियोधर्मी अपशिष्ट पदार्थों का उचित निस्तारण भी एक समस्या है। फिर भी जीवाश्म ईंधनों के समाप्त हो जाने के बाद मानव का परमाणु ऊर्जा पर ही मुख्य रूप से निर्भर रहना पड़ेगा।

य. जल विद्युत ऊर्जा– पृथ्वी 5400×10^{21} जूल ऊर्जा सूर्य से प्रति वर्ष ग्रहण करती है। इस ऊर्जा द्वारा अवशोषित जल–वाष्प बादल बनाता है, जो वर्षा के माध्यम से पुनः पृथ्वी पर लौट आता है जो कि नदियों के द्वारा पुनः समुद्र में मिल जाता है। नदियों में बांध बनाकर जल बहाव के द्वारा उत्पन्न विद्युत को जल विद्युत कहते हैं। यह एक सस्ता एवं वयकरणीय स्त्रोत है। इससे प्रदूषण भी नहीं फैलता। जब तक सूर्य का प्रकाश उपलब्ध है, ऊर्जा का यह स्त्रोत समाप्त नहीं हो सकता।

र. हाइड्रोजन ऊर्जा– हाइड्रोजन के एक परमाणु के जलने पर 142 किलो जूल ऊर्जा प्रति ग्राम प्राप्त होती है तथा शेष में जल बचता है, जिससे प्रदूषण का कोई खतरा नहीं होता।

$$H_2 + 1/2O_2 \longrightarrow H_2O + 284 \text{ KJ mole}^{-1}$$

परन्तु हाइड्रोजन के बहुत हल्के होने के कारण इसके भण्डारण की बहुत अधिक समस्या है। यह मीथेन से पाँच गुना अधिक महँगी पड़ती है, परन्तु तकनीकी विकास के बाद शायद यह उपयोगी हो क्योंकि जल के रूप में इसके भण्डार असीमित हैं।

ल. जैव ऊर्जा –

(i) पशु गोबर, मानव मलमूत्र तथा जैव अपशिष्ट जब अवायुवीय वातावरण में अपघटित किए जाते हैं तो बायोगैस बनती है। इसमें मुख्यतः मीथेन होती है जो सस्ती पड़ती है और जिसके जलने से प्रदूषण नहीं होता। बायो गैस संयंत्र में जो अपशिष्ट बच जाता है वह पौधों के लिए अच्छी खाद होती है। इस प्रकार मानव व पशु

मलमूत्र व अपशिष्ट का प्रयोग करके ऊर्जा का निर्माण किया जा सकता है जो ऊर्जा व पर्यावरण की वर्तमान स्थिति सुधारने में बहुत सहायक होगा।

(ii) पेट्रोपौधों से ऊर्जा– यूफोरविएसी (Euphorbiacese), एक्लपीडेसी (Asclepidaceae), एपोसाइनैर्स (Apocynaceae) एवं कॉनवालबूलेसी (Convolvulaceae) के पौधों से जो दूध (लेटैक्स) निकलता है, उसमें कई हाइड्रोकार्बन होते हैं। इससे भी पेट्रोलियम पदार्थों जैसे ईंधनों का निर्माण हो सकता है।

(iii) डेण्ड्रोथर्मल ऊर्जा– खाली पड़ी भूमि में उगी झाड़ियों, गन्ने के अपशिष्ट (Bagasse pith) इत्यादि का उपयोग ईंधन के रूप में किया जा सकता है।

20.3.6.3 पशु एवं मानव स्वास्थ्य में अन्तर्सम्बन्ध (Inter relation between animal & human health) –

जलवायु परिवर्तन का प्रभाव समस्त जीवों (जन्तुओं व वनस्पतियों) पर पडता है फलतः इसका प्रभाव पशु व मानव स्वास्थ्य पर पड़ना स्वाभाविक है। पुनश्च् पशु और मानव में उत्पादक और उपभोक्ता जैसे सम्बन्ध है अस्तु पशु एवं मानव स्वास्थ्य में अन्तर्सम्बन्ध पाया जाना एक सत्य तथ्य है। जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार कारकों जैसे वैश्विक ऊष्णता, हरित गृह प्रभाव, ओजोन पर्त छिद्रीकरण, इत्यादि के चलते वनस्पतियॉ दूषित होगीं तथा दूषित वनस्पतियों को खाने वाले पशुओं में ये संदूषक (भारी धातु आयन इत्यादि) प्रवेशित होकर जमा होते रहेंगे। मानव के भोजन में पशु उत्पाद जैसे दूध, दही, घी, मांस इत्यादि एक महत्वपूर्ण व आवश्यक घटक है। फलतः खाद्य श्रृंखला के माध्यम से पशु शरीर में जमा संदूषक मानव शरीर में पहुँचेंगे। संदूषकों अनुमेय सीमा से अधिक मात्रा पशु के स्वास्थ को दुष्प्रभावित करेगी जिससे पशु में अस्वस्थता जन्म लेगी। ऐसे अस्वस्थ पशु का उत्पाद मानव द्वारा ग्रहण किये जाने पर उसका अस्वस्थ होना स्वाभाविक है। संक्षेप में पारिस्थितिक तंत्र में मानव का उसके जैविक घटकों (वनस्पतियाँ, पशु आदि) तथा अजैविक घटको (कार्बनिक, अकार्बनिक व जलवायुवीय) से सीधा सम्बन्ध है। अतः तंत्र के किसी भी घटक में उत्पन्न में असन्तुलन या अस्थिरता का प्रभाव मानव पर पडेगा। इस प्रकार से पशु व मानव स्वास्थ में गहन अन्तर्सम्बन्ध है अर्थात पशु के स्वस्थ रहने पर मानव भी स्वस्थ रहेगा तथा पशु के अस्वस्थ होने पर मानव का अस्वस्थ होना सुनिश्चित है। अतः मानव को स्वस्थ रहने के लिए पारिस्थितिक तंत्र के प्रत्येक घटक को स्वस्थ (सन्तुलित) बनाये रखना होगा। दूसरे शब्दों में मानव को स्वस्थ व खुशहाल रहने के लिए सतत् विकास के उदद्श्यों पर अमल करना होगा।

20.3.7 जलवायु परिवर्तन एवं प्राकृतिक आपदा का अन्तर्सम्बन्ध (Inter relation of climate change & natural disaster)-

आज जलवायु परिर्वतन एक सर्व मान्य सत्य हैं। एन. ओ. ए. ए., यू. एस. (NOAA,US) से प्राप्त ऑकडों के आधार पर जलवायु परिर्वतन के चार प्रमुख लक्षण हैं :

20.3.7.1 कार्बन डाइ–आक्साइड की विश्वव्यापी सांद्रता

कार्बनडाइ–आक्साइड ऊष्मा ग्रहण करने वाली एक विशिष्ट गैस है जो मनुष्य के कार्यों जैसे जंगलों की कटाई और जीवाश्म ईंधन के जलने और प्राकृतिक प्रक्रमों जैसे श्वसन और ज्वालामुखियों के विस्फोट से वातावरण में आती है। इंटरगवर्मेंट पैनल ऑन क्लाइमेंट चेंज **(आईपीसीसी, (IPCC)** के जलवायु वैज्ञानिकों ने इस शताब्दी के दौरान होने वाले जलवायु परिर्वतनों का अनुमान लगाने के लिए कुछ प्रयोगों के परिणामों की समीक्षा की। इन अध्ययनों से पता चला कि निकट भविष्य में संसार के औसत सतही तापमान में 1.4 से 5.8^{0}C की वृद्धि होगी। आज दुनिया की आधी से अधिक आबादी समुद्र से 60 किमी दूरी तक रहती है। खारे पानी के फैलाव और सागर के प्रसार से उस पर गंभीर प्रभाव पड सकते हैं। मानव स्वास्थ्य एक बडी सीमा तक सुरक्षित पेयजल, पर्याप्त भोजन, सुरक्षित आवास और बेहतर सामाजिक दशाओं पर निर्भर है। जलवायु परिर्वतन से ये सभी बातें प्रभावित होगी। जलप्रदूषण होगा और जल निकास की व्यवस्थाओं को हानि पहुँचेगी। जलजनित एवं संक्रामक रोगों के प्रसार का जोखिम बढेगा। पौधों–पशुओं के रोगों में वृद्धि के कारण प्रभावित क्षेत्रों में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रुप से भी खाद्य उत्पादन में भारी कमी आयेगी। मानव स्वास्थ्य पर जलवायु परिर्वतन के प्रभाव के कारण एक बड़ी आबादी विस्थापित होगी जो पर्यावरण शरणार्थी कहलाएगी।

20.3.7.2 वैश्विक ऊष्णता

पृथ्वी तक आने वाली सौर ऊर्जा का लगभग 75 प्रतिशत भाग पृथ्वी की सतह सोख लेती है जिससे उसका तापमान बढ़ता है। शेष ऊष्मा वापस वायुमंडल में चली जाती है कुछ ऊष्मा हरितगृह गैसो ज्यादातर कार्बनडाइ–आक्साइड द्वारा सोख ली जाती है। चूँकि कार्बनडाई आक्साइड को मानव की अनेक क्रियाओं व क्रिया कलापों द्वारा वातावरण में छोड़ी जाती है। अतः इसकी तेजी से बढ़ती मात्रा वैश्विक उष्णता पैदा हो रही है। सतह का औसत तापमान लगभग 15^{0}c है। हरितगृह प्रभाव के न होने पर जो तापमान होता यह उससे लगभग 33^{0}C अधिक है। इन गैसों के बिना पृथ्वीतल का अधिकांश भाग–18^{0}C के औसत वायु तापमान पर जमा हुआ होता है। पिछले कुछ दशकों के दौरान औद्योगिकीकरण और जनसंख्या वृद्धि की मानवीय गतिविधियों के कारण वायुमंडल में कार्बनडाइ–आक्सॉइड के स्तर में 31 प्रतिशत वृद्धि हुई है। जिसके कारण निचले वायुमंडल में अधिक ऊष्मा का जमाव होने लगा है। अनेक देशों में ग्रीनहाउस गैसो को कम करने के लिए यूनाइटेड नेशनस फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लॉइमेट चेंज (यूएनएफसीसीसी UNFCCC) के अंतर्गत एक संविदा पर हस्ताक्षर किए हैं।

20.3.7.3 अम्लीय वर्षा

स्वचलित वाहनों व औद्योगिक इकाइयों द्वारा कोयला, प्राकृतिक तेल और गैसें (जीवाश्म ईंधन) जब ईंधन के रूप में जलाए जाती हैं तो कार्बनडाईआक्साइड़, सल्फर डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन आक्साइड जैसे रसायन पैदा होते हैं। वायु की जलवाष्प से मिलकर ये काबोनिकअम्ल, सल्फयूरिक अम्ल, नाइट्रिक अम्ल जैसे हानिकारक प्रदूषक पैदा करते हैं। ये अम्लीय प्रदूषक वायु की तरंगों के द्वारा वायुमंडल में ऊपर जाते है और बाद में अम्लीय वर्षा के रुप में पृथ्वी पर वापस आते हैं। उत्तरी अमरीका, यूरोप, जापान, चीन और दक्षिण पूर्व एशिया में अम्लीय वर्षा से व्यापक हानि होती है। अम्लीय वर्षा पृथ्वी के उन पोषक तत्वों को घोलकर बहा ले जाती है जिनकी पौधो को जरुरत होती हें प्रकृति में मौजूद एल्युमिनियम और पारे जैसे विषैले पदार्थों को भी घोल लेती है। जो मुक्त होकर जल को प्रदूषित और पौधों को विषाक्त करते हैं तथा इससे जलीय पारितंत्र के पौधों और प्राणियों पर

प्रभाव पडता है। अम्लीय वर्षा इतिहासिक महत्व की इमारतों; पत्थर की मूर्तियों एवं अन्य वस्तुओं का क्षरण कर व्यापक हानि पहुँचाती है।

20.3.7.4 ओजोन परत का ह्रास

ओजोन गैस ऑक्सीजन पर सूर्य के प्रकाश की क्रिया से बनती है । यह पृथ्वी की सतह से 20 से 50 किमी ऊपर एक पर्त बनाती है। वायुमंडल में यह प्रक्रिया प्राकृतिक रुप से चलती रहती है पर बहुत धीमी होती है। इसके प्रत्येक अणु में तीन ऑक्सीजन परमाणु होते हैं। यह पृथ्वी को सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों से बचाती है। ऊपरी वायुमंडल का ओजोन पराबैंगनी किरणों को सोखकर इन्हें पृथ्वी की सतह तक पहुँचने से रोकता है। रेफ्रिजरेटरों, वातानुकूलन के संयंत्रों, एरोसोल के छिड़काव इत्यादि द्वारा उत्सर्जित क्लोरोफ्लोरो कार्बन ओजोन पर्त के साथ क्रिया कर उसे उसे नष्ट कर रहे हैं। वस्तुतः ये सी0एफ0सी0 अणु ओजोन के अणुओं से क्रिया करके उन्हें ऑक्सीजन के अणुओं में तोड़ देते हैं। ऑक्सीजन के अणु पराबैगनी किरणों को नहीं सोख पाते। 1980 के दशक में अंटार्कटिका के ऊपर ओजोन की पर्त को पतला होते पाया गया है। यही प्रवृत्ति अब ऑस्ट्रेलिया समेत दूसरे स्थानों पर भी देखने को मिलती है। ओजोन पर्त का विनाश होने से सूर्य की पराबैंगनी किरणें पृथ्वी पर पहुँचकर जन्तु त्वचा कैंसर जैसी गम्भीर बीमारियो को जन्म देंगी।

20.3.8 जलवायु परिवर्तन की दिशा,राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक प्रयास
(direction of climate change, national & satate level efforts)

(अ) भारत ने जलवायु परिवर्तन की समस्या से निजात पाने की दिशा में कदम उठाते हुए 30 जून, 2008 को जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना (National Action Plan on Climate Change, NAPCC) बनायी है। इस योजना में सौर ऊर्जा उत्पादन पर जोर देने के अलावा सात अन्य मिशन तय किए गए हैं जिनके जरिए ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी और अवश्यंभावी जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुकूलन हासिल करने के लक्ष्य प्राप्त किए जाएंगे। इनमें से जिस मिशन पर इस कार्य योजना में सबसे ज्यादा जोर दिया गया है, वह है सौर ऊर्जा उत्पादन में बढोतरी। बारहवीं पंचवर्षीय योजना की समाप्ति सन् (2017) तक सौर ऊर्जा उत्पादन को बढाकर एक हजार मेगावाट किये जाने की योजना है।

(ब) पवन ऊर्जा जैसे क्षेत्र में भारत ने अच्छी – खासी तरक्की कर ली है और यह विश्व के सर्वाधिक पवन ऊर्जा उत्पादन करने वाले देशों में शामिल है।

(स) इसके अलावा, देश में स्थापित पावर ग्रिडस के लिए यह अनिवार्य किया जाएगा कि वे नवीकरणीय ऊर्जा उत्पादनकर्ताओं से कम से कम 5 प्रतिशत ऊर्जा की खरीदारी करें।

(द) सरकार कम–कार्बन उत्सर्जन करने वाले उद्योगों, विनिर्मताओं व उपभोक्ताओ को वित्तीय लाभ प्रदान करेगी।

(य) जो उद्योग कार्यक्षमता सुधार पर एक तय लक्ष्य को प्राप्त कर लेंगे, उनको इसका क्रेडिट कार्ड दिया जाएगा इसे वह दूसरे को बेंच सकता है।

(र) 11 वीं योजना के आखिर तक 5,000 मेगावाट कोयला आधारित थर्मल प्लांट बंद करने का लक्ष्य भी इस कार्य योजना में रखा गया था।

(ल) 12 वीं योजना के दौरान 10,000 मेगावाट के थर्मल प्लांट या तों बंद कर दिए जाएंगे या फिर उनकी मरम्मत की जाएगी।

राष्ट्रीय कार्य योजना के मिशन

राष्ट्रीय कार्य योजना के तहत निम्न मिशन पूरे किए जाने हैं।–

(i) सौर ऊर्जा

(अ) भारत में बहुलता में उपलब्ध सूर्य की रोशनी या धूप पर टिका सौर ऊर्जा राष्ट्रीय मिशन ऊर्जा के विकेन्द्रीकरण के जरिए सबसे निचले स्तर के लोगो के सशक्तीकरण और मेगावाट श्रेणी के सौर ऊर्जा प्लांट को बढावा देने के लिए लांच किया गया है।

(ii) ऊर्जा कार्यक्षमता में सुधार

(अ) यह पूर्वानुमान लगाया गया था कि ऊर्जा संरक्षण अधिनियम – 2001 के प्रभावऔर कुछ अन्य उपायों के कारण 2012 तक भारत 10,000 मेगावाट ऊर्जा की बचत करने में सक्षम हो जाएगा।

(ब) इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए किए जाने वाले उपायों में ऊर्जा बचत प्रमाणपत्र या एनर्जी क्रेडिट के व्यापार वाले बाजार की स्थापना की गई है।

(स) जिस तरह दुनियाभर में कार्बन उत्सर्जन प्रमाणपत्र या कार्बन क्रेडिट की खरीद – बिक्री जाती है उसी तरह घरेलू स्तर पर उर्जा क्रेडिट का व्यापार शुरू किया जाएगा।

(द) उद्योगों, खासतौर पर वे उद्योग जिनमें ऊर्जा खपत सबसे ज्यादा है, के लिए कार्बन उत्सर्जन में कटौती के लक्ष्य निर्धारित किए जायेंगे। जो इकाई इन लक्ष्यों को हासिल कर लेगी, उसे एनर्जी क्रेडिट दिया जाएगा।

(iii) जल संरक्षण

(अ) जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी पैनल (IPCC) के एक ऑकलन के अनुसार भारत में 2050 तक पानी की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 35 प्रतिशत तक कम हो सकती है।

(ब) मध्य–पूर्व के देशों के अलावा कुछ ही देश ऐसे है जहॉ पानी की प्रति व्यक्ति उपलब्धता भारत की तुलना में कम है।

(स) यदि जलवायु परिवर्तन के नुकसानदेह प्रभावों को समाप्त भी कर दें तो भी भारत में 2050 तक पानी की कमी हो जाएगी।

(द) राष्ट्रीय कार्य योजना के तहत 20 प्रतिशत जल कार्यक्षमता सुधार का लक्ष्य रखा गया है। इसके लिए पानी के खारेपन को दूर करने सम्बन्धी व कचरे से जल पुनर्चक्रण जैसी तकनीके लागू की जाएगीं। वर्षा जल संचयन आदि जल संचरण तकनीकों को बढ़ावा दिया जाएगा।

(iv) हिमालयी पारिस्थितिक तंत्र को स्थिर रखना

(अ) उत्तरी भारत की सभी मुख्य नदियॉ हिम और बर्फ से अपना पानी हासिल करती हैं।

(ब) हिमालय के ग्लेशियर दुनिया के दूसरे ग्लेशियरों के मुकाबले ज्यादा तेजी से पिघलते जा रहे हैं।

(स) IPCC की चौथी आकलन रिपोर्ट में अनुमान व्यक्त किया था कि यदि हिमालयी ग्लैशियर के पिघलने की वर्तमान दर जारी रहती है तो 2035 या उससे पहले हिमालयी ग्लेशियर गायब हो जाएंगे और कुल ग्लेशियर क्षेत्र घटकर वर्तमान का पाँचवा हिस्सा ही रह जाएगा ।

(द) यदि हिमालयी ग्लेशियरों के पिघलने की वर्तमान दर जारी रही तो कई सदाबहार नदियॉ मौसमी नदियों में बदल जाएगी एवं जलविद्युत उत्पादन में भारी गिरावट आएगी।

(य) इस संकट से बचने के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना मे हिमालयी पारिस्थितिकी के संरक्षण का लक्ष्य तय किया गया है

(v) ग्रीन इंडिया

(अ) इसके तहत देश की करीब 6 मिलियन हेक्टेयर भूमि पर पेड लगाए जाने हैं, जंगलों को नष्ट होने से बचाना है तथा वन्य जीवों के लिए कॉरिडोर विकसित किये जाने है।

(ब) ग्रीन इंडिया प्लान का अंतिम लक्ष्य देश के एक तिहाई क्षेत्रफल को वनाच्छादित बनाना है।

(vi) हरित भारत राष्ट्रीय मिशन (जीआईएम)

(अ) हरित भारत मिशन योजना के अनुसार जलवायु परिवर्तन से देश के प्राकृतिक संसाधनों के वितरण , प्रकार और गुणवत्ता को नुकसान पहुँचेगा तथा संबंधित लोगो की जीविकाओं पर भी इसका असर पडेगा।

(ब) जीआईएम वानिकी क्षेत्र द्वारा किए गए पर्यावरणीय सुधार और जलवायु परिवर्तन, खाद्य सुरक्षा, जल संरक्षण, जैव विविधता संरक्षण और वनों पर निर्भर लोगों की जीविकाओं के सुरक्षा संबंधी कार्यों को मान्यता देता है।

(स) इसकी मुख्य बातें हैं– पारिस्थितिक तंत्रों में सुधार करना, समुदाय के युवाओं को वन अधिकारी के रूप में नियुक्त करना, ऐसी सोच और सुधार एजेंडा अपनाना जिससे कि प्राकृतिक छवि को कोई हानि न पहुँचे।

(द) इस मिशन के तहत मुख्य रूप से वनो की सघनता सुधारने, जैव विविधता पर जोर देने, जल और उन्नत जैव ईंधन व कार्बन उत्सर्जन में कटौती करने पर ध्यान दिया जाएगा।

(य) अनुसूचित जनजाति और वन में रहने वाले समुदायों के कुशल युवाओं को वन अधिकारी के रूप में नियुक्त किया जाएगा।

इस मिशन में वन / गैर वन वाली भूमि पर 50 लाख हेक्टेयर के वनों को बढाना तथा अन्य 50 लाख हेक्टेयर वन क्षेत्र की गुणवत्ता को सुधारना, जैव विविधता हाइड्रोलोजिकल सेवाएं तथा कार्बन में कमी समेत पारिस्थितिक तंत्र सेवाओं को सुधारना, वनों पर निर्भर रहने वाले 30 लाख परिवारों की कमाई को बढाना, 2020 तक 50–60 लाख टन तक कार्बन डाइ – ऑक्साइड मे कटौती करना इत्यादि शामिल है।

(vii) प्रयोगशाला से खेत योजना (Lab. to land programme)

(अ) ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 'लैब टू लैंड' नाम से एक महत्वाकांक्षी पहल शुरू की है जिसका लक्ष्य अंशधारकों के सहयोग तथा काम करने वालो कें व्यवहारिक प्रशिक्षण के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रो में कार्यक्रम कार्यान्वयन के प्रभाव में वृद्धि करना है।

यह कार्य योजना प्राकृतिक संसाधनो के बेहतर प्रबंधन, ग्रामीण उत्पादों के बेहतर विपणन और ग्रामीण आय के सतत प्रवाह को सुनिश्चित करने के लिए काम करेगी।

(य) इस पहल के तहत देशभर के 28 राज्यो के 43 जिलों का चयन किया गया है। जिनमें प्रायोगिक आधार पर प्रशिक्षण के माध्यम से कार्यक्रम कार्यान्वयन के प्रभाव क्षेत्र को विस्तार दिया जाएगा।

(र) पहल का लक्ष्य ज्ञान और नवचार के स्तर पर एक परस्पर सहयोगी समुदाय का निर्माण करना और ग्रामीण क्षेत्र की सभी योजनाओ जैसे ग्रामीण विकास, वाटरशेड मैनेजमेन्ट, पर्यावरण आय सृजन, रोजगार, सडक, स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, पेयजल, विद्युतीकरण, खाद्यसुरक्षा, भूमि अभिलेख, उद्योग, सिंचाई, नागरिक अधिकार पत्र व शिकायत निवारण तंत्र आदि के लक्ष्यों की संपूर्ण प्राप्ति प्रदर्शित करना है।

हमने जाना

जैव विविधता का मतलब सजीवों में पायी जाने वाली भिन्नता से है। प्रकृति के अन्धाधुन्ध दोहन और दोषपूर्ण जीवन शैली से जैव विविधता का संकट सामने है, जिसने मानवता के सम्मुख गंभीर चुनौतियाँ खड़ी की हैं। इनका सम्यक समाधान खोजना हम सबका साझा दायित्व है।

जैव विविधता संरक्षण के दो रूप हैं। एक यथास्थल संरक्षण और दूसरा बहिस्थल संरक्षण।

जैव विविधता को बनाये रखने के लिये प्रादेशिक और राष्ट्रीय स्तर पर अनेक विधिक प्रावधान किये गये हैं।

जलवायु परिवर्तन मानव समाज के सम्मुख सबसे गंभीर पर्यावरणीय चुनौती है। इसके दुष्परिणामों से मानव मात्र के अस्तित्व पर ही संकट आ पड़ा है। पर्यावरण संतुलन के प्रयासों में सतत और सक्रिय प्रयासों को बढ़ाकर ही हम इस चुनौती का सामना कर सकते हैं।

कठिन शब्दों के अर्थ

जैव विविधता – जैव विविधता से अभिप्राय किसी दिये हुये स्थान एवं कालखण्ड में विभिन्न प्रकार के जीवों की उपस्थिति से है। दूसरे शब्दों में सजीवों में पायी जाने वाली भिन्नता ही जैव विविधता कहलाती है।

जैव विविधता संरक्षण : जैव विविधता को संरक्षित करना या बनाये रखना ही जैव विविधता संरक्षण कहलाता है।

जलवायु परिवर्तन : जलवायु परिवर्तन वर्तमान की सबसे गम्भीर पर्यावरणीय समस्या है। इसके पाँच प्रमुख लक्षण हैं : कार्बन डाई आक्साइड की विश्वव्यापी सान्द्रता में वृद्धि, विश्वव्यापी सतह तापमान में वृद्धि, उत्तरी ध्रुवीय (आर्कटिक) समुद्र की बर्फ मे कमी, स्थलीय बर्फ में कमी तथा समुद्र के जल स्तर में वृद्धि।

अभ्यास के प्रश्न

1. जैव विविधता से आप क्या समझते हैं? जैव विविधता के विभिन्न स्तरों की चर्चा कीजिये।
2. जैव विविधता संरक्षण अधिनियम 2002 के प्रमुख प्रावधानों का वर्णन कीजिये।
3. देश एवं प्रदेश में जैव विविधता के सम्मुख प्रमुख चुनौतियाँ कौन–कौनसी हैं? इनसे कैसे निपटा जा सकता है?
4. जलवायु परिवर्तन से आप क्या समझते हैं? जलवायु परिवर्तन के क्या दुष्परिणाम हो रहे हैं? उदाहरण देकर स्पष्ट कीजिये।
5. ऊर्जा के गैर परम्परागत स्रोत कौन–कौनसे हैं? इनके उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण को कैसे रोका जा सकता है?
6. जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से बचाने के लिये राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हो रहे प्रयासों को रेखांकित कीजिये।

आओ करके देखें

अपने क्षेत्र के बुर्जुगों से बातचीत कर पता लगाने का प्रयास करें कि पिछले कुछ दशकों में आपके आस–पास के सामान्य वातावरण में क्या बदलाव आया है? इस बदलाव के क्या परिणाम हुए हैं ?

अपने क्षेत्र के जैव–विविधता प्रोफाइल बनाइये और उस पर एक समीक्षात्मक आलेख लिखकर सम्पर्क कक्षाओं में चर्चा कीजिये।

अपने आसपास जैव–विविधता से सम्बन्धित विधिक प्रावधानों को लोगों को बताने के लिये चर्चा सत्रों का आयोजन कीजिये।

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ सूत्र

पर्यावरणीय समस्याएँ, आर.के. गुर्जर, अविष्कार प्रकाशन, जयपुर (राज.)

जल संरक्षण तकनीक, एम.सी. खण्डेला, अविष्कार प्रकाशन, जयपुर (राज.)

■■■

20.4 : आपदा प्रबंधन (Disaster Management)

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि–

आपदा प्रबन्धन क्या है?

आपदाऐं कितने प्रकार की होती हैं और इनके कारण क्या होते हैं?

आपदा प्रबन्धन अधिनियम के प्रमुख प्रावधान कौन–कौन से हैं?

मानव जनित आपदायें कौन–कौनसी हैं? इनसे बचाव के क्या उपाय हैं?

आपदा प्रबन्धन में शासकीय और अशासकीय संस्थाओं की क्या भूमिका है?

20.4.1 परिभाषा एवं अवधारणा (Definition & concept)

''आपदा का अर्थ है, अचानक होने वाली एक विध्वंसकारी घटना जिससे व्यापक भौतिक क्षति होती है, जानमाल का नुकसान होता है।'' यह वह प्रतिकूल स्थिति है जो मानवीय, भौतिक, पर्यावरणीय एवं समाजिक कार्यकरण को व्यापक तौर पर प्रभावित करती है। **आपदा प्रबन्धन अधिनियम, 2005** में आपदा से तात्पर्य–किसी क्षेत्र में हुए उस विध्वंस, अनिष्ठ, विपत्ति या बेहद गंभीर घटना से है जो प्राकृतिक या मानव जनित कारणों से या दुर्घटनावश या लापरवाही से घटित होती है और जिसमें बहुत मात्रा में मानव जीवन की हानि होती हैं। या मानव पीड़ित होता है या सम्पत्ति को हानि पहुॅचती है या पर्यावरण का भारी क्षरण होता है। यह घटना प्रायः प्रभावित क्षेत्र के समुदाय की सामना करने की क्षमता से अधिक भयावह होती है।

चित्र 4.1: प्राकृतिक आपदा–बाढ

दैवीय प्रकोप को भी आपदा कहा जाता हैं। अर्थात'' किसी क्षेत्र में प्राकृतिक या मानवकृत कारणों से दुर्घटना या उपेक्षा से उद्भूत ऐसी कोई महाविपत्ति, अनिष्ट, विपत्ति या घटना है जिसके परिणामस्वरूप जीवन को सारवान हानि या मानवीय पीडा में या संपत्ति का नुकसान व विनाश एवं पर्यावरण को नुकसान पहुंचे तथा जो प्रभावित क्षेत्र के समुदाय की सामना करने की क्षमता से परे हैं **आपदा** कहलाती है। जैसे सूखा, बाढ, चक्रवर्ती तूफान आदि।''

पर्यावरण आपदा से अभिप्राय ऐसी प्रकृति या मानव निर्मित पराकाष्ठीय घटनाओं से है जो कि सहनीय क्षमता से परे होती हैं एवं जिससे जनधन का भारी नुकसान होता है।

दुर्घटना – प्राकृतिक एंव मानवजनित विपत्ति जो की आपदा प्राभावित क्षेत्र या विपत्ति क्षेत्र के समुदाय की सहनीय क्षमता के अन्दर हो, दुर्घटना कहलाती हैं। शार्ट सर्किट के कारण आग का लगना, वाहन टक्कर, भगदड, जल में डूबना, रेलगाडी का पटरी से उतरना इत्यादि।

राहतः दुर्घटना घटित हो जाने पर पीडित समुदाय को सहायता देना जिससे उनको आराम मिले राहत कहलाता है। उदाहरण के तौर पर भूंकम्प पीड़ित व्यक्तियों को स्वच्छ पानी एवं भोजन प्रदान करना

बचाव–किसी दुर्घटना अथवा खतरे की स्थिति में मानव समुदाय अथवा पशुओं को निकालकर सुरक्षित स्थान पर ले जाना बचाव कहलाता है उदाहरण के तौर पर बाढ पीड़ित ब्यक्तियों को सुरक्षित ऊँचे स्थान पर ले जाना ।

पुनर्वास– प्राकृतिक या मानव निर्मित आपदाओं के फलस्वरूप बेघर हुऐ व्यक्तियों को पुनः आवास की सुविधा प्रदान करना पुनर्वास कहलाता है किसी भी व्यक्ति के अस्तित्व के लिए पुनर्वास प्रथम कडी होती है पुनर्वास होने पर हर व्यक्ति अपने आगामी क्रिया–कलापों को प्रारम्भ कर सकता है पुनर्वास का कार्य वस्तुतः तो शासन द्वारा आपेक्षित होती है। किन्तु इसमें असरकारी एवं स्वैच्छिक संस्थाओं का सहयोग भी लिया जा सकता है।

संवेदनशीलता– संवेदनशीलता का तात्पर्य उस क्षेत्र से है जहाँ कोई विपदा/संकट की पुनरावृत्ति होती है। जैसे महाराष्ट्र का विदर्भ सूखे के प्रति संवेदनशील है एवं हिमालय की सम्पूर्ण पर्वतमाला भूकम्प के प्रति संवेदनशील है।

आपदा का भौगोलिक विस्तार– किसी भी आवदा का भौगौलिक विस्तार प्रायः आपदा की तीव्रता पर निर्भर करता हैं जैसे भूकम्प के मामले में रिएक्टर पैमाने पर उसका मान जितना अधिक होगा उसका भौगोलिक विस्तार उतना ही अधिक होगा, इसी प्रकार किन्ही दो क्षेत्रों के बीच हवा के दाब में जितना अधिक अंतर होगा चक्रवात तूफान व बवंडर की तीव्रता उतनी ही अधिक होगी। भौगोलिक प्लेट विवर्तिको का टकराव या एक दूसरे पर अतिव्यापन अधिक तेजी से होने पर भूकम्प की तीव्रता अधिक हो जाती है।

20.4.2 आपदाओं के प्रकार एवं कारण (Types & causes of disasters)

ये दो प्रकार की होती हैं :

अ. **प्राकृतिक आपदाएँ**– वे आपदायें जो प्रकृति जन्य होती है प्राकृतिक आपदाएँ कहलाती हैं। जैसे बाढ़, सूखा, भूकम्प, बादल फटना, भूमि अपरदन, चक्रवात, सुनामी, हिमस्खलन, वन आग, ज्वालामुखी फटना, इत्यादि।

ब. **मानवजनित आपदाएँ**– वे आपदाए जो मानव निर्मित कारणों से होती है। मानव जनित आपदाएँ कहलाती है जैसा वैश्विक उष्णता, ओजोन परत हास,नाभिकीय विनाश, अम्लीय वर्षा, जलवायु परिवर्तन, इत्यादि।

20.4.3 आपदा प्रबन्धन अधिनियम, 2005 (Disaster management act 2005)

1. इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम आपदा प्रबन्धन अधिनियम, **2005** है।

2. इसका विस्तार सम्पूर्ण भारत पर है।

3. यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जब केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे और इस अधिनियम की विभिन्न उपबन्धों के लिए और विभिन्न राज्यों के लिए भिन्न भिन्न तारीखें नियत की जाये और किसी राज्य के सम्बन्ध में इस अधिनियम के किसी उपबन्ध के प्रारम्भ के प्राप्ति किसी निर्देश का अर्थ यह लगाया जाए कि वह इस राज्य में उस उपबन्ध के प्रारम्भ के प्रति निर्देश है।

4. आपदा से किसी क्षेत्र में प्राकृतिक या मानवकृत कारणों से या दुर्घटना या उपेक्षा से उद्भूत ऐसी कोई महाविपत्ति, अनिष्ट, विपत्ति या घोर घटना अभिप्रेत है जिनका परिणाम जीवन के सारवान् हानि या मानवीय पीड़ाए या संपत्ति का नुकसान और विनाश या पर्यावरण का नुकसान या अवक्रमण है और ऐसी प्रकृति या परिणाम का है जो कि प्रभावित क्षेत्र के समुदाय को सामना करने की क्षमता से परे हो।

5. आपदा प्रबन्धन से योजना संगठन समन्वय और कार्यान्वयन की निरन्तर और एकीकृत प्रक्रिया अभिप्रेत है जो कि निम्नलिखित के लिए आवश्यक या समाचीन है :

   (i) किसी आपदा के खतरे या उसकी आशंका का निवारण ।

   (ii) किसी आपदा या उसकी गंभीरता या उसके परिणामों के जोखिम का शमन या कमी ।

   (iii) क्षमता निर्माण।

   (iv) किसी आपदा के निपटने लिए तैयारियॉ।

   (v) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा से तुरन्त बचाव।

   (vi) किसी आपदा के प्रभाव की गंभीरता या परिमाण का निर्धारण ।

   (vii) निष्क्रमण बचाव और राहत।

   (viii) पुनर्वास और पुनर्निमाण।

6. केन्द्र सरकार द्वारा राज पक्ष में अधिसूचना जारी कर इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए **राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण** की स्थापना की गई।

   (i) राष्ट्रीय प्राधिकरण में एक अध्यक्ष और नौ से अधिक उतने सदस्य होंगे जितने केन्द्रीय सरकार द्वाराविहित किए जाएं और जब तक कि नियमों में अन्यथा उपबंधन न किया जाए ।

(ii) भारत का **प्रधानमंत्री राष्ट्रीय प्राधिकरण का पदेन अध्यक्ष** होगा तथा नौ से अधिक ऐसे अन्य सदस्य जो राष्ट्रीय प्राधिकरण के अध्यक्ष द्वारा नाम निर्देशित किए जायेंगे।

(iii) राष्ट्रीय प्राधिकरण इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए आपदा का समय पर और प्रभावी मोचन सुनिश्चित करने के लिए आपदा प्रबन्धन के लिए नीतियाँ, योजनाएँ और मार्गदर्शक सिद्धान्त अधिकथित करने के लिए उत्तरदायी होगा।

7. राष्ट्रीय प्राधिकरण आपदा प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं पर सिफारिश करने के लिये एक **सलाहकार समिति** का गठन कर सकेगा जिनमे आपदा प्रबन्धन के क्षेत्र में विशेषज्ञ और राष्ट्रीय राज्य या जिला स्तर पर आपदा प्रबन्धन में व्यावहारिक अनुभव रखने वाले विशेषज्ञ होगें

8. केन्द्रीय सरकार धारा– 3 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने के ठीक पश्चात् राष्ट्रीय प्राधिकरण को इस अधिनियम के अधीन उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने के लिय एक राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति का गठन करेगी।

(i) राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति राष्ट्रीय प्राधिकरण को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करेगी और राष्ट्रीय प्राधिकरण की नीतियॉ तथा योजनाओं के कार्यान्वयन के लिए उत्तरदायी होगी तथा देश में आपदा प्रबंधन के प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी किए गए अनुदेशों का पालन सुनिश्चित करेगी।

(ii) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा के मोचन के प्रयोजन के लिए सभी सरकारी स्तरों पर तैयारी का मूल्यांकन कर सकेगी और जहाँ आवश्यक हो ऐसी तैयारी में वृद्धि करने के लिए निर्देश दे सकेगी।

(iii) विभिन्न स्तर के अधिकारियों, कर्मचारियों और स्वैछिक बचाव कर्मचारियों के लिए आपदा प्रबधंन के संबंध में विशेषीकृत प्रशिक्षण कार्यक्रम की योजना बना सकेगी और उनको समन्वित कर सकेगी।

(iv) किसी आपदा की स्थिति या आपदा की दशा में उसके मोचन के लिए समन्वय कर सकेगी।

(v) भारत सरकार के सम्बद्ध मंत्रालयों या विभागों, राज्य सरकारों और प्राधिकरणों को उनके द्वारा किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा के मोचन के लिए किए जाने वाले उपायों के संबंध में मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगी या निर्देश दे सकेगी।

9. सम्पूर्ण देश के लिए आपदा प्रबन्धन के लिए **राष्ट्रीय योजना** नामक एक योजना तैयार की जाएगी । जिसका राष्ट्रीय प्रधिकरण द्वारा अनुमोदन किया जाएगा। राष्ट्रीय योजना में निम्नलिखित क्रियाकलाप होंगे–

(i) आपदाओं के निवारण या उनके प्रभाव के शमन के लिए किए जाने वाले उपाय।

(ii) विकास योजनाओ में शमन संबंधी उपायों के एकीकरण के लिए किए जाने वाले उपाय।

(iii) राष्ट्रीय योजना का वार्षिक पुनर्विलोकन किया जाएगा और उसे अद्यतन किया जाएगा ।

10. राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन प्राधिकरण के निम्नलिखित कार्य होंगे :

(i) राहत कैंपों में आश्रयालय, खाद्य, पीने का पानी, चिकित्सा सुविधा और स्वच्छता के सम्बन्ध में उपलब्ध कराई जाने वाली न्यूनतम अपेक्षाएँ।

(ii) विधवाओं और अनाथों के लिए किए जाने वाले विशेष उपबन्ध।

(iii) जीवन की हानि मद्दे अनुग्रह सहायता और मकानों को नुकसान मद्दे सहायता तथा जीविका के साधनों की बहाली के लिए सहायता ।

(iv) ऐसी अन्य सहायता जो आवश्यक हो ।

11. प्रत्येक राज्य सरकार धारा–3 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राजपत्र में अधिसूचना द्वारा राज्य के लिए एक **राज्य आपदा प्रबंधन प्राधिकरण** की स्थापना कर सकेगी।

(i) राज्य प्राधिकरण में एक अध्यक्ष और नौ से अधिक उतने सदस्य होंगे जितने राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाएँ और जब तक कि नियमों में अन्यथा उपबंध न किया जाए, राज्य प्राधिकरण में राज्य का **मुख्यमंत्री पदेन अध्यक्ष** होगा तथा आठ से अधिक ऐसे अन्य सदस्य जो राज्य प्राधिकरण द्वारा नाम निर्दिष्ट किए जाएंगें।

12. राज्य प्राधिकरण, जब भी वह आवश्यक समझे, आपदा प्रबंधन के विभिन्न पहलुओं पर सिफारिशें करने के लिए एक **सलाहकार समिति** का एठन कर सकेगा जिसमें आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में विशेषज्ञों और आपदा प्रबंधन का व्यवहारिक अनुभव रखने वाले विशेषज्ञ होंगे।

13. राज्य प्राधिकरण इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य में आपदा प्रबंधन के लिए **नीतियां और योजनाएँ** अधिकर्थित करने के लिए उत्तरदायी होगा ।

14. राज्य सरकार, धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने के ठीक पश्चात् राज्य प्राधिकरण को इस अधिनियम के अधीन राज्य प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार राज्य प्राधिकरण के कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने और कार्य का समन्वय करने के लिए तथा राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करने के तथा राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए निर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए एक **राज्य कार्यकारिणी समिति** का गठन करेगी ।

राज्य कार्यकारिणी समिति राष्ट्रीय योजना और राष्ट्र योजना के कार्यन्वियन के लिए उत्तरदायी होगी और राज्य में आपदा प्रवन्धन के लिए समन्वय करने और मानिटरी करने वाले निकाय के रूप में कार्य करेंगी। जिसमे निम्नलिखित सदस्य होंगे –

(i) राज्य सरकार का **मुख्य सचिव, पदेन अध्यक्ष** होगा :

(ii) राज्य सरकार के ऐसे विभागों के चार सचिव जिन्हें राज्य सरकार ठीक समझे, पदेन ।

(iii) राज्य कार्यकारिणी समिति का अध्यक्ष ऐसी शक्तियों का प्रयोग और ऐसे कृत्यों का निर्वहन करेगा जो उसे राज्य सरकार द्वारा विहित किए जाऐं और ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करेगाा जो उसे राज्य प्रधिकरण द्वारा प्रत्यायोजित किए जाएँ।

(iv) राज्य कार्यकारिणी समिति जब भी वह अपने कृत्यों के दक्षतापूर्ण निर्वहन के लिए आवश्यक समझे एक या अधिक उपसमितियों का गठन कर सकेगी एवं अपने सदस्यों में से किसी को उपधारा (1) में निर्दिष्ट उपसमिति का अध्यक्ष नियुक्त कर सकेगी ।

(v) आपदाओं के विभिन्न रूपों से राज्य के विभिन्न भागों की भेघता की परीक्षा कर सकेगी और उनके निवारण या शमन के लिए किए जाने वाले उपायों की विनिर्दिष्ट कर सकेगी ;

15. आपदा द्वारा प्रभावित समुदाय की सहायता और सुरक्षा करने के प्रायोजनों के लिए या ऐसे समुदायो की राहत प्रदान करने के लिए या किसी आपदा की आशंका की स्थिति का निवारण करने या उसके विनाश का प्रत्युपाय करने या उसके प्रभावो से निपटने के प्रयोजन के लिए राज्य कार्यकारिणी समिति के निम्नलिखित कार्य होगें:

(i) किसी संवेदनशील या प्रभावित क्षेत्र में किसी व्यक्ति व/या वाहन के प्रवेश उसके भीतर आने–जाने और वहाँ से प्रस्थान को नियंत्रित और निर्बन्धित कर सकेगी।

(ii) मलबे को हटा सकेगी, खोज कर सकेगी और बचाव कार्य कर सकेगी।

(iii) राष्ट्रीय प्राधिकरण और राज्य प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मानकों के अनुसार आश्रय, खाद्य, पेयजल, आवश्यक रसद, स्वास्थ्य देखभाल और सेवाएँ उपलब्ध करा सकेगी ।

(iv) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा से निपटने के लिए जनताको जानकारी दे सकेगी।

(v) ऐसे उपाय कर सकेगी जिनके लिए केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार इस संबंध में निर्देश दे या ऐसे अन्य उपाय कर सकेगी जो किसी आपदा की आंशका की स्थिति या आपदा में आपेक्षित या वांछित हो।

16. प्रत्येक राज्य सरकार धारा 14 की उपधारा 1 के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने पर जिला आपदा प्रबंध के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य में प्रत्येक जिले के लिए ऐसे नाम से जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए एक **जिला आपदा प्रबंधन प्राधिकरण** की स्थापना करेंगी।

(i) जिला प्राधिकरण में अध्यक्ष और सात से अधिक उतने अन्य सदस्य होगें एवं कलेक्टर या जिला **मजिस्ट्रेट या उपायुक्त पदेन अध्यक्ष** होगा।

(ii) जिला प्राधिकरण का मुख्य कार्यपालक अधिकारी, पुलिस अधीक्षक एवं जिले का मुख्य चिकित्सा अधिकारी, सभी पदेन तथा दो से अधिक जिला स्तर के अन्य अधिकारी जिन्हें राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा, उक्त प्राधिकरण के सदस्य होंगे।

(iii) जिला प्राधिकरण का अध्यक्ष जिला प्रधिकरण के अधिवेशनो की अध्यक्षता करने के अतिरिक्त जिला प्रधिकरण की ऐसी शक्तियों का प्रयोग और कृत्यों का निर्वहन करेगा जो जिला प्रधिकरण उसे प्रत्यायोंजित करे।

17. जिला प्राधिकरण जब भी वह आवश्यक समझे अपने कृत्यो के दक्षतापूर्ण निर्वहन के लिए एक या अधिक **सलाहकार समितियों** और अन्य समितियों का गठन कर सकेगा।

(i) जिला प्राधिकरण अपने सदस्यो में से उपधारा (1) में निर्दिष्ट समिति का अध्यक्ष नियुक्त करेगा।

(ii) राज्य सरकार जिला प्रधिकरण को उतने अधिकारी परामर्शदाता और अन्य कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जितने वह जिला प्राधिकरण के कृत्यों के लिए आवश्यक समझे।

(iii) जिला प्राधिकरण आपदा प्रबंधन के लिए योजना, समन्वयन और कार्यान्वयन निकाय के रूप में कार्य करेगा और राष्ट्रीय प्राधिकरण और राज्य प्राधिकरण द्वारा अधिकाधिक मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार जिले में आपदा प्रबंधन के प्रायोजन के लिए सभी उपाय करेगा।

(iv) राष्ट्रीय नीति, राज्य नीति, राष्ट्रीय योजना, राज्य योजना और जिला योजना के कार्यान्वयन का समन्वय और मूल्यांकन कर सकेगा ।

(v) विभिन्न जिला स्तर के प्राधिकारियों और स्थानीय प्राधिकारियों को आपदाओं के निवारण या शमन के लिए ऐसे अन्य उपाय करने के लिए आवश्यक निर्देश दे सकेगा एवं मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित कर सकेगा।

(vi) जिला स्तर पर सरकारी विभागों द्वारा तैयार की गई आपदा प्रबंधन योजनाओं के कार्यान्वयन का मूल्यांकन (Monitor) कर सकेगा।

18. राज्य के प्रत्येक जिले के लिए आपदा प्रबंधन हेतु जिला प्राधिकरण द्वारा, स्थानीय प्रधिकारियों से परामर्श करने के पश्चात् और राष्ट्रीय योजना को ध्यान में रखते हुए एक जिला योजना तैयार की जायेगी जिसे राज्य प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित किया जायेगा। जिला योजना में निम्नलिखित सम्मिलित होंगे :

(i) जिले में ऐसे क्षेत्र जो आपदाओं के विभिन्न रूपों में संवेदनशील हैं

(ii) जिला स्तर के सरकारी विभागो और जिले में स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा आपदा के निवारण और शमन के लिए किए जाने वाले उपाय।

(iii) जिला स्तर के सरकारी विभागों और जिले में स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा के मोचन के लिए अपेक्षित क्षमता निर्माण और उनकी तैयारी के उपाय।

(iv) जिला प्राधिकरण आदेश द्वारा, जिला स्तर पर किसी अधिकारी या किसी विभाग या किसी स्थानीय प्राधिकारी से यह अपेक्षा कर सकेगा कि वह आपदा निवारण या उसके शमन के लिए या उनके प्रभावी रूप से मोचन के लिए ऐसे उपाय करे, जो आवश्यक हों और ऐसा अधिकारी या विभाग ऐसे आदेश का पालन करने में बाध्य होगा ।

(v) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा में समुदाय की सहायता करने, उसका सरंक्षण करनें या उसे राहत उपलब्ध कराने के प्रायोजन के लिए जिला प्राधिकरण निम्नलिखित कार्य करेगाः

क. जिले में किसी सरकारी. विभाग और स्थनीय प्राधिकारी के पास उपलब्ध संसाधनों की निकासी और उपयोग के लिए निदेश दे सकेगा।

ख. अतिसंवेदनशील या प्रभावित क्षेत्र में या उससे अथवा उसके भीतर किसी व्यक्ति या/व यानों के आवागमन को नियंत्रित और निबंधित कर सकेगा।

ग. आश्रय, भोजन, पीने का पानी और आवश्यक सामाग्री, स्वास्थ्य देखरेख और सेवाएं उपलब्ध करा सकेगा।

घ. प्रभावित क्षेत्र में संचार प्रणालियों की स्थापना कर सकेगा।

ड. अदावाकृत शवों के निपटारे के लिए इंतजाम कर सकेगा।

19. आपदा प्रबंधन के लिए सरकार द्वारा निम्नलिखित उपाय किए जा सकेंगे :

(i) केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए ऐसे सभी उपाय करेगी, जिन्हें वह आपदा प्रबंधन के प्रयोजन के लिए आवश्यक और समीचीन समझे।

(ii) आपदा प्रबंधन के संबंध में भारत सरकार के मंत्रालयों या विभागों, राज्य सरकारों, राष्ट्रीय प्रधिकरण , राज्य प्राधिकरणो, सरकारी या गैर सरकारी सगंठनों के कार्यों का समन्वयन करना

(iii) भारत सरकार के मत्रांलयो या विभागो द्वारा अपनी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में आपदा के निवारण और शमन के लिए उपायों के एकीकरण को सुनिश्चित करना ।

20. भारत सरकार के प्रत्येक **मंत्रालय या विभाग** का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह –

(i) राष्ट्रीय प्राधिकरण और राष्ट्रीय कार्यकारिणी द्वारा अधिकाथित मार्गदर्शक सिद्वातों के अनुसार आपदा के निवारण, शमन, तैयारी या क्षमता निर्माण के लिए आवश्यक उपाय करे;

(ii) राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अधिकाकथित मार्गदर्शक सिद्धांतो के अनुसार आपदाओं के निवारण या शमन के लिए उपायों की अपनी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में एकीकृत करे;

(iii) इस अधिनियम के उपबंधो के अधीन रहते हुए, प्रत्येक राज्य सरकार राष्ट्रीय प्राधिकरण राज्य सरकार द्वारा अधिकथित मार्गदर्शिक सिद्धांतो में विनिर्दिष्ट सभी उपाय तथा ऐसे और उपाय करेगी जिन्हे वह आपदा प्रबंधन के प्रयोजन के लिए आवश्यक या समीचीन समझे।

21. राज्य सरकार के **प्रत्येक विभाग** का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह –

(i) राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धांतों के अनुसार आपदाओ के निवारण, शमन तैयारी और क्षमता निर्माण के लिए आवश्यक उपाय करें ;

(ii) अपनी विकास योजनाओं और परियोजनाओं में आपदा के निवारण और शमन के लिए उपायों को एकीकृत करें;

(iii) आपदा के निवारण, शमन, क्षमता, निर्माण और तैयारी के लिए निधियाँ आवंटित करें

22. राज्य सरकार का **प्रत्येक विभाग**, राज्य प्राधिकरण द्वारा अधिकथित मार्गदर्शक सिद्धातों के अनुरूप एक आपदा प्रबंधन योजना तैयार करेगा जिसमें निम्नलिखित अधिकथित होगा :–

(i) उन आपदाओं के प्रकार जिससे राज्य के विभिन्न भाग सवेदनशील हैं।

(ii) आपदा के निवारण या उसके प्रभावों के शमन या दोनों के लिए नीतियों का उस विभाग द्वारा विकास योजनाओं और कार्यक्रमों के साथ एकीकरण;

(iii) किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा की दशा में और उन आपातकालीन सहायता कार्यों में जिनके किए जाने की उनसे अपेक्षा है, राज्य के उक्त विभाग की भूमिका और उत्तरदायित्व;

23. केन्द्र सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, आपदा प्रबंधन हेतु **राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान** का गठन किया जाएगा ।

(i) राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान में उतने सदस्य होंगे, जितने केन्द्रीय सरकार विहित करें ।

(ii) राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान का एक ऐसा निकाय होगा जिसका गठन केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान के सदस्यों में से ऐसी रीति से किया जाएगा जो विहित की जाए ।

(iii) आपदा प्रबंधन के लिए शैक्षिक और वृत्तिक पाठ्यक्रमों सहित शैक्षिक सामाग्री का विकास कर सकेगा ;

(iv) बहुविपत्ति के शमन, तैयारी और उसके मोचन के उपायों से सहबद्ध महाविद्यालय या स्कूल अध्यापकों और छात्रों, तकनीकि कार्मिकों तथा अन्य व्यक्तियो सहित प्रणधारकों के बीच जागरूकता पैदा कर सकेगा।

(v) ऐसी सभी अन्य विधि पूर्ण कार्य कर सकेगें जो उपरोक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक या आनसंगिक हो।

24. केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन सरंस्थान को उतने अधिकारी, परामर्शदाता और अन्य कर्मचारी उपलब्ध कराएगी जितने वह उसके कृत्यों का निर्वहन करने के लिए आवश्यक समझे ।

25. किसी आपदा की आशंका की स्थिति आपदा के विशेषज्ञातापूर्ण मोचन के प्रयोजन के लिए एक राष्ट्रीय **आपदा मोचन बल** का गठन किया जाएगा। बल का साधारण अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण राष्ट्रीय। प्राधिकरण में निहित होगा और उसके द्वारा उनका प्रयोग किया जायेगा तथा बल की कमान और उनका अधीक्षण केन्द्रीय सरकार द्वारा राष्ट्रीय आपदा मोचन बल के महानिदेशक के रूप में नियुक्त किए जाने वाले अधिकारी में निहित होंगे।

26. केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा किसी आपदा की आशंका की स्थिति या आपदा में निपटनें के लिए **राष्ट्रीय आपदा मोचन निधि** के नाम से ज्ञात होने वाली एक निधि का गठन कर सकेगी जिसमें आपदा प्रबंधन के प्रयोजन के लिए केन्द्र सरकार या किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा दिए गए कोई अनुदान जमा किए जा सकेगें।

27. केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, आपदा के शमन के प्रयोजन के लिए अनन्य रूप से परियोजनाओं के लिए **राष्ट्रीय आपदा शमन निधि** के नाम सेएक निधि का गठन कर सकेगी और उसमें ऐसी रकम जमा की जाएगी जो केन्द्रीय सरकार, संसद द्वारा इस निमित्त विधि द्वारा किए गए सम्यक् विनियोग के पश्चात् प्रदान करें।

28. राज्य सरकार, राज्य प्राधिकरण और जिला प्राधिकरणों का गठन करने के लिए अधिसूचनाओं के जारी किए जाने के ठीक पश्चात् इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए निम्नलिखित **निधियों की स्थापना** करेंगी अर्थात्:

(i) राज्य आपदा मोचन निधि के नाम से ज्ञात होने वाली निधि,

(ii) जिला आपदा मोचन निधि के नाम से ज्ञात होने वाली निधि,

(iii) राज्य आपदा शमन निधि के नाम से ज्ञात होने वाली निधि,

(iv) जिला आपदा शमन निधि के नाम से ज्ञात होनें वाली निधि।

29. भारत सरकार का प्रत्येक मंत्रालय या विभाग, अपने वार्षिक बजट में, अपनी आपदा प्रबंधन योजना में वर्णित क्रियाकलापों और कार्यक्रमों को करने के प्रयोजनो के लिए **निधियों** का उपबंध करेगा।

30. **अपराध और शाक्तियां** : जो कोई, युक्तियुक्त कारण के बिना –

(i) केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के किसी अधिकारी या कर्मचारी अथवा राष्ट्रीय प्राधिकरण या राज्य प्राधिकरण अथवा जिला प्राधिकरण द्वारा प्राधिकृत किसी व्यक्ति के लिए इस अधिनियम के अधीन उसके कृत्यों के निर्वहन में **बाधा डालेगा**;

(ii) इस अधिनियम के अधीन केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार या राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति या जिला प्राधिकरण द्वारा उसकी ओर से दिए गए किसी निवेश का पालन करने से **इंकार करेगा**,

उक्त दोष सिद्धि पर **कारावास** से जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्मानें से, अथवा दोनों दण्डनीय होगा और यदि ऐसी बाधा या निर्देशों का पालन करने से इंकार करने के परिणामस्वरूप धन की हानि होती है या उनके लिए आसन्न खतरा पैदा होता है तो दोषसिद्धि पर कारावास की अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी।

(ख) प्राकीर्ण

(i) आपदा पीड़ित ब्यक्तियों को प्रतिपूर्ति राहत देते समय लिंग जाति, समुदाय, उद्भव या धर्म के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जाएगा ।

(ii) केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्याकन्वित करने के लिए नियम राजपत्र में अधिसूचना द्वारा , बना सकेगी।

(iii) राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान, केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए, इस अधिनियम और तद्धीन बनाए गए नियमों से सगंत विनियम राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बना सकेगा।

(iv) राज्य सरकार, इस अधिनियम के प्रायोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम राजपत्र में अधिसूचना द्वारा बना सकेगी।

20.4.4 मानव जनित आपदाएँ (Manmade Disasters)

चित्र 4.2: मानव जनित आपदा–भोपाल गैस त्रासदी

मानवकृत कारणों से उत्पन्न आपदाएँ मानव जनित आपदाएँ कहलाती हैं। **भोपाल गैस त्रासदी** : 2–3 दिसम्बर, 1984 की मध्यरात्रि में भोपाल स्थित अमेरिकन फर्म यूनियन कार्बाइड, इंडिया (लि0) के कारखाने (सन् 1969 मे स्थापित व 1979 से कीटनाशी **सीवान** का उत्पादन शुरू) के एक संयंत्र से मानवीय असावधानी से **मिथाइल आइसो साइनेट (मिक)** नामक एक जहरीली गैस रिसाव के कारण अनेक लोगों की जानें गयीं तथा अंसख्य लोग। गम्भीर रूप से प्रभावित हुए। यह घटना 'भोपाल गैस त्रासदी' (Bhopal gas tragedy) के नाम से जानी जाती है। उक्त कारखाने में सीवान या कार्बामेट नामक एक कीटनाशक उत्पाद मे मिक का उपयोग किया जाता था। इसका भण्डारण भूमि के अदर टंकी में किया जाता था। इन्हीं कन्टेनरों में मिक गैस का रिसाव प्रांरभ हुआ जो 40 मिनट तक चलता रहा। इस रिसाव को तत्काल निष्प्रभावी करना संभव नहीं हो पाया एवं भोपाल एक गैस चेम्बर की भाँति हो गया। सरकारी आँकड़ों के अनुसार पहले मरने वालों की संख्या 2259 थी बाद में तत्कालीन राज्य सरकार ने गैस के कारण लगभग 3787 लोगों की मृत्यु लगभग 10 हजार व्यक्ति आँखों तथा त्वचा के बुरी तरह से प्रभावित हो जाने के कारण स्थायी रूप से विकलांग हो गए तथा अधिकांश के आखों की रोशनी चली गई।

इस घटना से लोग तडप – तडप कर मर रहे थे। हजारों जानवरों ने प्राण त्याग दिए। पेड़, पौधों, मिट्टियों , पेयजल जलाशयों इत्यादि पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ा। चिकित्सकों नें मृत्यु के दो कारण बताये प्रथम श्वसन प्रक्रिया में बाधा और द्वितीय गैस द्वारा उत्पन्न आंतरिक स्त्रोतों का फेफड़ों में भर जाना। पीडित व्यक्तियों ने आँख, नाक , गले में जलने की शिकायत की तथा कुछ व्यक्तियों की आँखो के कार्निया पर घाव बन गये एवं वे तत्काल अंधे हो गये। लगभग 30 हजार लोग आंशिक रूप से तथा 1.5 लाख लोग लघु रूप से शरीरिक विकलांगता का शिकार हुए । अन्य अनुमानों के आधार पर 8000 लोगों की मृत्यु दो सप्ताह के अन्दर हो गयी और अन्य लगभग 8000 लोग रिसी गैस से फैली बीमारियों से मर गये। सन् 2006 मे राज्य सरकार द्वारा दाखिल शपथ पत्र में माना गया कि गैस रिसाव से करीब 5,58,125 लोग सीधे तौर पर प्रभावित हुए थे और आंशिक रूप से प्रभावित होने वालों की संख्या 38,478 थी। ''भोपाल गैस त्रासदी'' विश्व की औधोगिक दुर्घटनाओं की एक भीषण दुर्घटना है । इस दुर्घटना ने भारत के अलावा विश्व के अनेक वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया है।

घटना में कारकों का योगदान :

नवम्बर, 1984 तक यूनियन कार्बाइड कारखाने के कई सुरक्षा उपकरण न तो ठीक हालात में थे और न ही सुरक्षा के अन्य मानकों का पालन किया गया था। स्थानीय समाचार पत्रों के पत्रकारों के रिर्पोट के अनुसार कारखानें में सुरक्षा के लिए रखी गई सभी नियमावलियाँ (Manuals) अंग्रेजी में थी, जबकि कारखाने में काम करने वाले ज्यादातर कर्मचारियों को अंग्रेजी का बिल्कुल ज्ञान नहीं था। साथ ही पाइप की सफाई करने वाले हवा निकास द्वार (Vent) ने भी काम करना बन्द कर दिया था समस्या यह थी कि टैंक संख्या E-610 में नियमित रूप से जयादा MIC गैस भरी थी तथा गैस का तापमान भी निर्धारित 4.5^0C की जगह 20^0C था। मिक को ठण्डे स्तर पर रखने के लिए बनाया गया शीतलन संयंत्र भी विद्युत बिल कम करने के लिए बन्द कर दिया गया था। 2–3 दिसम्बर की रात्रि को टैंक E–610 में पानी का रिसाव हो जाने के कारण अत्यन्त ताप व दाब पैदा हो गया, और टैंक का आन्तरिक तापमान 200 ^{0}C के ऊपर पहुँच गया फलतः 45–60 मिनट के अन्तराल में लगभग 30 मैट्रिक टन उक्त विषैली गैस का रिसाव वातावरण में हो गया। मिक गैस के बादल में फॉस्जीन, हाइड्रोजन सायनाइड, कार्बन मोनो–ऑक्साइड, हाइड्रोजन क्लोराइड आदि गैसो के अवशेष भी पाये गये थे। सर्वाधिक प्रभावित क्षेत्र में 70% से ज्यादा कम पढे लिखे चिकित्सक थे, जो इस रासायनिक आपदासे निपटने के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं थे।

20.4.5 आपदा प्रबंधन में शासकीय एवं अशासकीय संस्थाओं की भूमिका (Role of GOs & NGOs in disaster management)

प्रायः आपदाएँ मानवीय लोभ और पर्यावरण में अवांछित हस्तक्षेप की सहज परिणीति होती हैं। आपदा प्रबंधन में पर्यावरणविदों, भूवैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों की सतर्कता एवं आपदा के आने से पूर्व इसकी भविष्यवाणी कर इस पर लगाम लगा सकती है। शासनतंत्र, सैन्य बल तथा स्वयंसेवी संस्थान की आपदा बचाव अभियान और राहत कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

चित्र 4.3 प्राकृतिक आपदा–भूकम्प

20.4.5.1 आपदा प्रबंधन में शासकीय संस्थाओं की भूमिका (Role of GOs in disaster management)

(i) प्राकृतिक आपदाओं के पूर्वानुमान करके सम्बन्धित लोगों को चेतावनी देना।

(ii) आपदा पूर्व, आपदा कालीन और आपदा पश्चात किए जाने वाले कार्यों की सुनियोजित तैयारी करना।

(iii) आपदा प्रभावित लोगों को वहाँ से निकालकर सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाना।

(iv) प्रभावित लोगों को जहाँ से सुरक्षित निकाल सकना असंभव लग रहा हो वहॉ हेलीकॉप्टरों से पेय एवं खाद्य पदार्थों तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं के पैकेट पहुँचाना।

(v) तत्कालिक राहत के रूप में प्राथमिक उपचार के उपकरण जीवन के लिए आवश्यक वस्तुएँ जैसे भोजन, पेयजल, दूध, माचिस, मोमबत्ती वस्त्र, कंबल इत्यादि को शीघ्रातिशीघ्र उपलब्ध करवाना।

(vi) प्रभावित इलाके में उचित मूल्य की दुकानें तथा परामर्श केन्द्र खुलवाना।

(vii) क्षतिग्रस्त सडकों, जल व विद्युत आपूर्ति की मरम्मत कर चालू हालत में लाना।

(viii) आपदा प्रभावित लोगो के जानमाल की दीर्घकालीन सुरक्षा करना।

(viii) आपदा के बाद जनहानि रोकना, प्रभावितों को पुनर्वास व रोजगार प्रदान करवाना।

(ix) कृषि तथा पर्यटन को पुनः बढावा देना।

20.4.5.2 आपदा प्रबन्धन में अशासकीय संस्थाओं की भूमिका (Role of NGOs in disaster management)

प्रशासन के अतिरिक्त अनेक स्वयंसेवी संगठनों एंव अशासकीय संस्थाओं द्वारा भी आपदा प्रबंधन में महत्वपूर्ण सहयोग प्रदान किया जाता है। मुख्यतः **तीन परम्परिक समूह** : सामुदायिक (समाजसेवी), धार्मिक एवं विशेष रूचि वाले समूह आपदा प्रबंधन में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लेते हैं। चूँकि उक्त समूह या अशासकीय संस्थायें आपदा से जुड़े राहत, बचाव, व पुर्नवास के कार्यों को अपनी एक नैतिक जिम्मेदारी मानते हैं। इसलिए ये ऐसे कार्य पूरी ईमानदारी, मनोयोग एवं उत्साह से करते हैं। ये समूह आपदा प्रभावित लोगो की राहत, बचाव व पुनर्वास में मदद के साथ खाद्य, औषधि व रोजमर्रा की वस्तुएँ प्रदान कर सहायता करते हैं। ये संस्थान सरकार के आपदा नियंत्रण कार्यक्रम के उचित संचालन पर नज़र भी रखते हैं। शासन द्वारा दी जाने वाली विभिन्न आपदा सम्बन्धी विशेष सुविधाओं की जानकारी एवं उनको प्राप्त करने में लगने वाली विभिन्न प्रकार की सूचनाएँ व कागजात जैसे निर्वाचन कार्ड, आधार कार्ड, पैन कार्ड, राशन कार्ड, किसान कार्ड, भू अभिलेख, आय, निवास व जाति प्रमाण पत्र इत्यादि शासन को उपलब्ध कराते हैं ताकि उक्त सुविधाएँ पीड़ित लोगों को मुहैया हो सकें। ये शासन द्वारा उपलब्ध करायी जा रही सामग्रियों को एकत्र कर पीड़ित लोगों तक पहुँचाने व वितरण में भी मदद करते हैं। संक्षेप में ये पीड़ित लोगों व शासन के बीच एक सेतु का कार्य करते हैं।

हमने जाना

आपदा का अर्थ अचानक होने वाली विध्वंसकारी घटना से है जिससे व्यापक क्षति होती है। आपदायें दो प्रकार की हो सकती हैं : प्राकृतिक और मानव जनित।

आपदाओं से सुरक्षा और बाद में पुनर्वास कार्य के लिए आपदा प्रबन्धन अधिनियम 2005 बनाया गया है। जिससे विविध प्रावधान ऐसी स्थिति में बचाव एवं पुर्ननिर्माण का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान आपदा के समय कार्य करने वाला एक महत्त्वपूर्ण संगठन है। आपदा के समय आस–पास के स्वयंसेवी संगठन और स्थानीय निकाय महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इस हेतु व्यवस्थित प्रशिक्षण और जानकारी आवश्यक होती है।

कठिन शब्दों के अर्थ

आपदा – आपदा का अर्थ है अचानक होने वाली एक विध्वंसकारी घटना जिससे व्यापक भौतिक क्षति होती है, जान–माल का नुकसान होता है। यह वह प्रतिकूल स्थिति है जो मानवीय, भौतिक, पर्यावरणीय एवं सामाजिक कार्यक्रम को व्यापक तौर पर प्रभावित करती है।

आपदा प्रबन्धन – आपदा प्रबन्धन का अर्थ है आपदा से निपटने के लिये योजना बनाना, संगठन तैयार करना, समन्वय से कार्यक्रम चलाना और निरन्तरता से कार्य करते हुये पूर्व की स्थिति को ना सिर्फ बहाल करना बल्कि प्रयास करना कि भविष्य में इस तरह की घटनाओं से होने वाली धन–जन की क्षति में कमी लाई जा सके।

अभ्यास के प्रश्न

1. आपदा से आप क्या समझते हैं? आपदा प्रबन्धन के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालिये।
2. आपदाओं के कारण एवं प्रकार पर विस्तार से समझाइये।
3. आपदा प्रबन्धन अधिनियम, 2005 के प्रमुख प्रावधानों को स्पष्ट कीजिये।
4. प्राकृतिक आपदाओं से आप क्या समझते हैं? इन्हें किस प्रकार रोका जा सकता है?
5. मानव जनित आपदाओं से आप क्या समझते हैं? इन्हें किस प्रकार रोका जा सकता है?
6. आपदा प्रबन्धन में शासकीय एवं अशासकीय संस्थाओं की भूमिका की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिये।

आओ करके देखें

क्या आपके क्षेत्र में कोई प्राकृतिक आपदा आई है। अपने बुजुर्गों से चर्चा कर इसके प्रमुख कारणों को जानने का प्रयास कीजिये।

भूकम्प और बाढ़ की स्थिति में आप धन–जन की हानि रोकने हेतु कौनसे उपाय करेंगे? इसकी एक विस्तृत कार्य–योजना बनाइये और उसे सम्पर्क कक्षा में विचार–विमर्श हेतु रखिये।

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ सूत्र

प्राकृतिक प्रकोप एवं आपदाएँ, एस.पी. मिश्रा, अविष्कार प्रकाशन, जयपुर (राज.)

पर्यावरण व परती भूमि, एस.सी. कलवार, अविष्कार प्रकाशन, जयपुर (राज.)

■■■

20.5 : पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी : मध्यप्रदेश के सम्बन्ध में (Environment & Ecology : In Relevance of M.P.)

उद्देश्य

इस इकाई को पढ़कर आप जान सकेंगे कि–

मध्य प्रदेश में जैव–विविधता का स्वरूप कैसा है?

राष्ट्रीय और प्रादेशिक परिप्रेक्ष्य में प्रमुख पर्यावरणीय खतरे कौन–कौन से हैं?

पर्यावरण के पुर्ननिर्माण की कुछ महत्वपूर्ण पहल और उनके प्रभावों से परिचित हो सकेंगे।

मध्य प्रदेश सरकार ने पर्यावरण के अनुकूल विकास के लिये क्या रणनीति तैयार की है?

20.5.1 प्रदेश के प्राकृतिक संसाधन कृषि जलवायु क्षेत्र (Natural resources agricultural climatic zone of state)

मध्य प्रदेश एक प्राकृतिक संसाधन से युक्त बाहुल्य राज्य है। इस राज्य में बहुत से ऐसे प्राकृतिक संसाधन पाये जाते है जो राज्य की आय का स्रोत बनते हैं। उक्त प्राकृतिक संसाधनों का वर्णन नीचे विस्तार से दिया गया है।

क. खनिज सम्पदा (Mineral resouces)

मध्य प्रदेश को खनिज संसाधनो की दृष्टि से धनी राज्यों की श्रेणी में रखा जाता है (**सारणी 5.1**)। यह प्रदेश न सिर्फ ,मैगनीज, बाक्साइट तथा कोयला प्रमुख क्षेत्र है बल्कि एकमात्र हीरा उत्पादक राज्य का दर्जा इसी को प्राप्त है।

सारणी 5.1: म0प्र0 के खनिज एवं उनके प्रमुख क्षेत्र

खनिज	**प्रमुख भण्डार क्षेत्र**
लौह अयस्क	मण्डला, बालाघाट
मैंगनीज	बालाघाट, छिंदवाड़ा, झाबुआ, खरगौन
ग्रेफाइट	बैतूल
सीसा	होशंगाबाद, दतिया, शिवपुरी, झाबुआ, जबलपुर
बॉक्साइट	फुटका, करेरा, कटनी, अमरकण्टक, मैनपाट
हीरा	पन्ना, हीनोता (पन्ना), मझगवाँ, (सतना), जबलपुर
चूना पत्थर	जबलपुर, झाबुआ, धार, सतना
डोलोमाइट	बालाघाट, बैतूल, छिंदवाड़ा, जबलपुर
तॉबा	मलाजखण्ड, (बालाघाट), सलीमनाबाद (जबलपुर), होशंगाबाद, सागर
संगमरमर	जबलपुर, (सफेद), बैतूल, सिवनी,छिंदवाड़ा, ग्वालियर (रंगीन)
कोयला	शहडोल, छिंदवाड़ा, होशंगाबाद, बैतूल

ख. वन सम्पदा एंव वन्य जीवन (Forest resources and wild life)

वन किसी भी राज्य की अमूल्य सम्पदा है। वन न केवल प्रकृति को रमणीय बनाते हैं, बल्कि देश की अर्थव्यवस्था को भी सुदृढ़ता प्रदान करते हैं वनो से प्राप्त विभिन्न वनोपज एंव इसके अन्य उपयोगों ने देश की आर्थिक स्थिति को मजबूती दी है। मध्य प्रदेश वनो एवं वनोपज की दृष्टि से एक सम्पन्न राज्य (**सारणी 5.2**) है। जनजातियों की बहुलता, मानसूनी जलवायु की प्रकृति, तापमान, वर्षा की मात्रा एंव पठारी भूमि आदि घटक प्रदेश के वनो के विकास में सहायक है।

प्रदेश में वन्य जीवन के संरक्षण के लिए कई विधियाँ अपनाई गई हैं क्योंकि वन्य प्राणियों के सन्दर्भ में मध्य प्रदेश एक सम्पन्न राज्य है। देश के विभिन्न क्षेत्रो में पाये जाने वाले वन्य जीवन को मध्य प्रदेश में देखा जा सकता है। यह वन्य जीवन को सुरक्षित बनाए रखने के लिए मध्य प्रदेश में 03 राष्ट्रीय उद्यान बाँधवगढ, कान्हा एव पन्ना बनाए गये हैं।

सारणी 5.2 मध्य प्रदेश के प्रमुख वनोपज, उनके उपयोग एवे उत्पादन क्षेत्र–

क्रम स0	वनोपज	उपयोग	क्षेत्र
1	तेंदू	बीड़ी निर्माण	जबलपुर, रीवा, दमोह, शहड़ोल
2	बॉस	कागज, भवन निर्माण	सीधी, शहड़ोल, बैतूल, होशंगाबाद
3	खैर	कत्था,पेंट, औषधि, चर्मशोधक	जबलपुर, सागर, दमोह, उमरिया, होशंगाबाद
4	हर्र	खाद्य सामग्री, पेंट, दवाई उद्योग	शहड़ोल, मण्डला, बालाघाट, छिंदवाड़ा
5	गोंद	प्रिंटिंग, सौन्दर्य, प्रसाधन	पश्चिमी मध्यप्रदेश के क्षेत्र
6	लख	चूडी, औषधि, सौन्दर्य प्रसाधन उद्योग	जबलपुर, सिवनी, शहड़ोल, होशंगाबाद

ग- कृषि तथा पशुधन (Agriculture and animal husbandry)

मध्य प्रदेश की अर्थ व्यवस्था कृषि प्रधान है। यहाँ की कृषि न केवल प्रदेश बल्कि देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देती है बल्कि प्रदेश की जनता का एक बड़ा भाग कृषि सम्बन्धी उद्योगों के माध्यम से अपना जीविकोपार्जन चला रहा है। राज्य की 74.43% जनता गाँवों में रहती है। जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध कृषि से है। मध्य प्रदेश कृषि की दृष्टि से अन्य राज्यों की तुलना में पिछडा राज्य है। यहाँ की धरातलीय विषमता, मानसूनी जलवायु पर निर्भरता, अविकसित तकनीक एवं आधुनिक कृषि यन्त्रों या उपकरणो के अभाव में प्रदेश को उक्त क्षेत्र में वांक्षित सफलता नही मिल सकी है।

यदि मध्य प्रदेश में पशुधन की ओर ध्यान दिया जायें तो पता चलता है कि मध्य प्रदेश की अर्थव्यवस्था का एक सहायक घटक पशुधन भी है। कृषि के विकास के अन्तर्गत पशुधन का उपयोग कृषि कार्य के लिए आवश्यक पशुबल, के साथ दुग्ध, माँस एवं अन्य उत्पादो के लिए किया जाता है।

घ - जल संसाधन (Water resources)

मध्य प्रदेश की अर्थव्यवस्था कृषि पर अधारित है और कृषि मुख्यत; नदियों एंव सिचाई साधनों पर निर्भर होती है। प्रदेश की नदियाँ न सिर्फ सिंचाई करती हैं, बल्कि जल विद्युत भी इन्ही के माध्यम से पैदा होती है। इस तरह प्रदेश की अर्थव्यवस्था में नदियों का अति महत्वपूर्ण योगदान है। मध्य प्रदेश में सभी दिशाओं में नदियाँ बहती हैं। राज्य में बेतवा, चम्बल, शिप्रा, ताप्ती, नर्मदा इत्यादि के बेसिन के विशाल क्षेत्र है। इस क्षेत्र में जल की मात्रा भी पर्याप्त है तथा कृषि की दृष्टि से भी यह क्षेत्र उपयुक्त है।

ड. कृषि जलवायु (Agro climate)

मध्य प्रदेश कृषि की दृष्टि से अन्य राज्यो की तुलना में पिछडा राज्य है यहाँ की धरातलीय विषमता मानसूनी जलवायु पर निर्भर करता है। यहाँ की धरातलीय ऐसी है कि यहाँ कृषि की पैदावार कम हो रही हैं वैसे तो मध्य प्रदेश की जलवायु कृषि के लिए उपयुक्त है लेकिन यहाँ की स्थलाकृति विषम है। अतः यहाँ पैदावार बहुत कम होती है। मध्यप्रदेश को जलवायु स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभकारी है। देश के 11 कृषि जलवायु क्षेत्र में से म0प्र0 में 04 कृषि जलवायुवीय क्षेत्र हैं। मध्यप्रदेश सोयाबीन, दाल, चना और लहसुन उत्पादन में प्रथम प्रदेश है। म0प्र0 केला संतरा, आम और नीबू फलों के उत्पादन में सभी राज्यों का मुखिया है। म0प्र0 शीर्ष राज्यो में एक हैं जो धनिया, गेंहूँ और मिर्च का अत्यधिक मात्रा में उत्पादन करते हैं।

म0प्र0 की 70% ग्रामीण जनसंख्या प्रत्यक्ष, परोक्ष रुप से कृषि व इससे सम्बन्धी अन्य कार्यो से निर्भर है। झाबुआ, धार, बंधवानी, पश्चिमी निमाड़ बिटुल,मान्डला छिन्दवाड़ा, सिवनी और बालाघाट जिलों की जनजातियों ने सर्वाधिक आर्थिक वृद्धि दर प्रदर्शित की है। इसी प्रकार पिछड़ें जिलों में पन्ना, राजगढ भी विशिष्ट है। पाँच जिलों जैसे टीकमगढ, छतरपुर, शिवपुरी, ग्वालियर और दतिया ने कृषि क्षेत्र में ऋणात्मक वृद्धि दर प्रदर्शित किया है। कटनी, भिंड, रीवा और सतना में 1% से कम वृद्धि दर दिखाया है। इन जिलों की खराब निष्पत्ति का कारण लगातार पड़ने वाला सूखा है। आखिरी दस वर्षो सालो में नौ वर्ष यह राज्य सूखे की मार झेलता आया है। सिंचित भूमि की वृद्धि हुई है किन्तु ज्यादातर (लगभग) 70% कृषि क्षेत्र आज भी वर्षा के जल पर निर्भर करता है।

20.5.2 मध्यप्रदेश की जैवविविधता (Biodiversity of M.P)

जैव समृद्व राष्ट्रो में भारत पहले 10 या 15 देशो में आता है। भारत में 350 स्तनधारी (संसार की आठवीं बड़ी संख्या), पक्षियों की 1200 प्रजातियाँ (ससांर मे आठवाँ स्थान), सरीसृपों की 453 प्रजातियाँ (ससांर में 5 वां स्थान) तितलियो और गुबरैलो (Moths) की 13000 प्रजातियाँ एव मकोड़ो की 50000 प्रजातियाँ ज्ञात हैं। अज्ञात प्रजातियों की संख्या इससे भी कहीं बहुत अधिक हो सकती है। हमारे देश में संसार की कुल उभयचर प्राणियों की 62% संख्या तथा छिपकलियों की कुल ज्ञात 153 प्रजातियों में 50% प्रजातियाँ पायी जाती है। कृषि की परम्परागत

फसलों में धान एवं अन्य अनाज, सब्जियां और फलों की 30000–प्रजातियाँ है। इन पौधों की सर्वाधिक विविधता पश्चिमी धार, पूर्वी घाट, उत्तरी हिमालय और पूर्वोत्तर की पहाड़ी क्षेत्रों में है। यहाँ पर पर मवेशियों की संख्या 27, बकरियों की 22, भेड़ो की 40 एवं भैसो की 8 प्रजातियाँ पायी जाती हैं। अपने देश में पाये जाने वाले **दो हाट स्पॅाट में एक मध्य प्रदेश** को माना जाता है। इस राज्य में तन्त्रीय जैवविविधता जिसमें मैदान, कन्दर (Ravines), टीला (Ridges), घाटियाँ, रिपेरियन क्षेत्र एवं समतल मैदान शामिल हैं इसी के साथ यहां पर चार प्रकार के मुख्य जगंल एक राष्ट्रीय पार्क एवं 10 वन्यजीव अभ्यारण्य शामिल हैं। यहाँ पर पौधों की 5000, पक्षियों की 500 एवं मछलियों की 180 जातियाँ पायी जाती हैं। अनेकों धान प्रजातियाँ एवं छोटे खाद्यान जैसे– ज्वार, बाजरा, सांवा, कुटकी, कोदो आदि स्वदेशी पशुओं एवं मुर्गों जैसे कड़कनाथ प्रजातियाँ यहाँ पर सामान्य रूप से पायी जाती हैं। यहाँ पर 6 प्रकार की अनुसूचित जनजातियाँ पायी जाती हैं, जिनके रीति रिवाज, पेशा एवं सस्कृति अलग–2 हैं। यहाँ की जैव विविधता लगभग राष्ट्र की 2/5 जनसंख्या को रोजगार एवं भोजन उपलब्ध कराती है। 1000 स्वदेशी औषधीय पौधों से भरपूर प्रणाली ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य प्रदान करती है।

20.5.3 पर्यावरणीय खतरे एंव प्राकृतिक आपदाएँ

(Environmental hazards and natural disasters)

यद्यपि पर्यावरण प्रकोप एवं विनाश चाहे वे प्राकृतिक हो या मानव जनित जन धन के सन्दर्भ में जीव समुदाय (पौधों) तथा जन्तुओं के लिए सामान्य रुप में विध्वंसक तथा संकटापन्न होते हैं। पर्यावरणीय या प्राकृतिक प्रकोपो से कतिपय लाभ भी होते हैं जैसे बाढ़ के द्वारा बाढ़कृत मैदानों में मिट्टियों का प्रति वर्ष जलोढ निक्षेपण से नवीकरण होता रहता है तथा मिट्यिों में पोषक तत्वों की वृद्धि के कारण उनकी उर्वरता बढ़ती रहती है। भूमिस्खलन के समय कभी–कभी मलवा द्वारा नदियों में अवरोध हो जाने से झीलों का निर्माण हो जाता है। ज्वालामुखी के उद्गार के समय निस्सृत राख आदि के मिट्टीयों में जमाव के कारण उनकी उर्वरता बढ़ जाती है। लावा के शीतलन के बाद काली पर रेगुर मिट्टी का निर्माण होता है। कभी–कभी भूकम्प के कारण भूमिगत जल के प्रवाह में अवरोध उत्पन्न हो जाता है। जिस कारण भूमिगत जल में स्थिरीकरण हो जाने से जलभरे का निर्माण हो जाता है। म0 प्र0 में देखा जाए वो बहुत सारी जगहों एवं पहाडों का निर्माण ज्वालामुखी उद्गार से हुआ है। अत; हम कह सकते हैं पर्यावरणीय खतरे एंव प्राकृतिक आपदाएँ हमारे लिए लाभदायक और हानिकारक दोनो है। नीचे कुछ मुख्य प्राकृतिक आपदाओं व पर्यावरणीय खतरे का विवरण दिया गया है।

20.5.3.1 सूखा (Drought)

परिभाषा– सूखे का अर्थ है पानी की कमी जल की कमी अर्थात पानी की कमी से उत्पन्न आपदा सूखा कहलाती है। लंबी अवधि तक किसी क्षेत्र में पानी की उपलब्धता में अस्थायी कमी से यह उत्पन्न होता है जिससे स्थानीय अर्थव्यवस्था में प्रभाव पडता है। बारिश की कमी से फसल की हानि सूखे का सबसे आमरुप है। सूखा एक मंद

गति से उत्पन्न आपदा जो आर्थिक, औद्योगिक और सामाजिक क्षेत्र को कमजोर करता है। यह विकास प्रक्रिया को उलट देता है। स्वास्थ्य की समस्याएँ उत्पन्न करता है तथा असामाजिक व्यवहार को जन्म देता है। इससे प्रभावित क्षेत्रो के अलावा आसपास के सूखे से अप्रभावित क्षेत्र भी इसके दुष्प्रभावों से अछूते नहीं रहते।

चित्र 5.1: प्राकृतिक आपदा– सूखा

अ. सूखे के प्रकार (Types of drought) – यह तीन प्रकार का होता है।

(i) मौसमीय सूखा

(ii) जलीय सूखा

(iii) कृषि सम्बन्धी

(i) **मौसमी सूखा**– यह सूखा किसी क्षेत्र में मासिक अथवा मौसमी वर्षा सामान्य से काफी कम होने पर उत्पन्न होता है। जैसे की म0प्र0 में यदि जलवायु परिर्वतन होने के कारण वर्षा कम होती है तो यहाँ नदी पोखरों में पानी की कमी हो जाती है। प्रायः प्राकृतिक जल पर निर्भर रहने वालों को इस सूखे से नुकसान होता है।

(ii) **जलीय सूखा**– यह सूखा किसी क्षेत्र में जल की कमी के फलस्वरुप सतही जल स्त्रोतों में उपलब्ध जल की कमी से होता है। लंबी अवधि तक पड़ने वाला मौसम संबंधी सूखा भी जलीय सूखा उत्पन्न कर सकता है।

(iii) **कृषि सम्बन्धी सूखा**– यह सूखा पानी की कमी से फसलों में आंशिक या पूरी क्षति पहुँचाकर कृषि कार्यों को बुरी तरह से प्रभावित करता है। यह भयावह स्थिति का मुख्य कारण है। वर्षा का औसत अनुपात अनुसार न होना और जल संरक्षण का प्रबंध होना। इससे किसानों को समय पर जल की उपलब्धता नही होती तथा

कृषि नष्ट हो जाती है। बैंक से लिया गया लोन और फसल न होने के कारण किसानो को आत्महत्या का रास्ता मजबूरी में अपनाना पड़ता है।

ब. कारण (Causes)

(i) म0 प्र0 में बारिश का पर्याप्त मात्रा में न होना।

(ii) पर्याप्त शासकीय सुविधाओं का अभाव।

(iii) कृषि से अधिक उद्योगों को जल आपूर्ति करना।

(iv) वर्षा जल का उचित उपयोग न हो पाना।

(v) भूजल का आवश्यकतानुरूप रिचार्ज न हो पाना।

(vi) मृदा संरक्षण के क्षेत्र में पर्याप्त प्रयासों की कमी।

(vii) मध्य प्रदेश में 51 जिलो में 46 जिलो को 2015–16 में सूखा ग्रस्त घोषित किया गया। जलवायु परिवर्तन, ग्रीन हाउस प्रभाव, वैश्विक तापन सूखा पड़ने के कारणों में एक है।

(viii) दक्षिण पश्चिमी मानसून का देरी से आना तथा मानसून का समय पूर्व समाप्त हो जाना

स. हानियाँ (Losses)

(i) फसल और कृषि उत्पादन की क्षति।

(ii) पशुधन की क्षति।

(iii) पीने के पानी की स्वच्छता पर दुष्प्रभाव।

(iv) अकाल मृत्यु एवं रोगों का फैलना।

(v) मरुस्थलीकरण में वृद्धि होना।

(vi) हरित पट्‌टी (ग्रीन बेल्ट) में कमी तथा मिटट्‌ी अपरदन का होना।

(vii) सूखे के प्रति संवेदनशील न होने से उसके दुष्प्रभावों में बढोत्तरी।

ब. नियंत्रण (Control) – सूखे की आपदा की रोकथाम एवं न्यूनीकरण अच्छी प्रबंधन तकनीक के द्वारा संभव है। निम्नलिखित क्रियाकलाप नियंत्रण में सहायक होंगे :

(i) पुरानें कुओं, तालाबों, बावड़ियों इत्यादि का जीर्णोद्धार करके।

(ii) जल आगम प्रबंधन (Watershed management) के द्वारा।

(iii) जल वितरण में नियंत्रण लगाकर।

(iv) वनोन्मूलन को कम करके तथा अधिकाधिक वृक्षारोपण करके ।

(v) बाँधों का निर्माण करके।

(vi) उन्नत सिचाई के तरीको को अपनाकर।

(vii) जल संसाधन प्रबंधन उन्नत करके।

(viii) पारिस्थितकी तंत्र को बिना नुकसान पहुँचाए विकास योजनाओं को लागू करके।

(ix) सूखे से उत्पन्न आपदा की भविष्यवाणी, पूर्वोनुमान, चेतावनी पद्यति तथा प्रबंधन तकनीको और उन्नत कर सूखे पर नियंत्रण किया जा सकता है।

20.5.3.2 भूकम्प (Earthquake)

यह पूर्णतः प्राकृतिक एवं सर्वाधिक हानिकारक आपदा है जो बिना किसी पूर्व सूचना के आ जाता है। भूकम्प को मनुष्य दैवी प्रकोप मानता था, किन्तु अब वैज्ञानिकों ने इसके कारणों की खोज की है। भूकम्प और आस्थिर भू भागों का गहरा सम्बन्ध है। वैज्ञानिकों का मत है कि भूकम्प प्राय; उन क्षेत्रो में आया करते हैं। जहाँ ज्वालामुखी एवं भू अस्थिरता के कारक उपस्थित हों।

अ. कारण (Causes) – भूकम्प के अनेक कारण हो सकते हैं जैसे भू–पर्पटी का टकराना, ज्वालामुखी उद्गार, गुफाओं का ढह जाना, खानो मे चट्टानो का भंजन इत्यादि।

ब. हानियाँ (Losses) – भूकम्प का आँकलन इसके द्वारा की गई क्षति के आधार पर किया जा सकता है। भूकम्प से जनधन की हानि होती है। सघन जनसंख्या वाले क्षेत्रों में भूकम्प आने से सर्वाधिक विनाश होता है। भूकम्पीय झटको से रेल, सडक, पुल, भवन, बाँध, कारखानों का भारी नुकसान होता है।

स. नियंत्रण (Control) – वनोन्मूलन रोककर, वृक्षारोपण करके, कोयला, पत्थर,खनिज इत्यादि हेतु खनन कार्य को सीमित करके, भूजल दोहन रोककर इत्यादि।

20.5.3.3 मरुस्थलीकरण (Desertification)

सतत भू अपरदन, अनियंत्रित पशु चारण, अतिभूजल दोहन तथा कृषि विधियों के गलत अभ्यासों के फलस्वरुप उपजाऊ भूमि का अनउपजाऊ भूमि में रुपान्तरण मरुस्थलीकरण कहलाता है।

अ. **कारण (Causes)** – मृदा अपरदन, अनियन्त्रित पशु–चारण, वनों का विनाश, अति भूजल दोहन, न्यूनतम भूजल संभरण, अविवेकपूर्ण कृषि कार्य, पारिस्थतिकी असन्तुलन, रेगिस्तानी क्षेत्रों के द्वारा कृषि योग्य भूमि का अतिक्रमण इत्यादि।

ब. **हानियाँ (Losses)** – खेती योग्य भूमि का ह्यस, खाद्यान्न व चारा संकट, जीवकोपार्जन का संकट, भुखमरी, पारिस्थितिक असन्तुलन इत्यादि।

स. **नियंत्रण (Control)** – बेहतर भूमि उपयोग नियोजन एवं प्रबन्धन संसाधनों का गुणवत्ता के आधार पर विवेकपूर्ण उपयोग, रक्षक पट्टी निर्माण, अवरोधकों के निर्माण से मृदा अपरदन पर नियंत्रण, जल संग्रह कम पानी वाली फसलों का चुनाव, टपक सिचांई का चुनाव, रेत का स्थिरीकरण, न्यूनतम खनन, पशु चारण में नियंत्रण इत्यादि।

मध्यप्रदेश में मरुस्थलीकरण– मध्यप्रदेश में 6.83 लाख हैक्टेयर भूमि मरुस्थल बन चुकी है। जिसका 21% बुन्देलखण्ड में है।

20.5.3.4 मृदा क्षरण (Soil Erosion) – हवा बहते हुए जल इत्यादि बाहय कारकों द्वारा मृदा कणों के एक स्थल से दूसरे स्थल को स्थानान्तरण की प्रक्रिया मृदा क्षरण या मृदा अपरदन कहलाती है।

चित्र 5.2 : पर्यावरणीय मृदा क्षरण

अ. मृदा क्षरण के प्रकार (Types of soil erosion)

(i) सामान्य व प्राकृतिक मृदा क्षरण

(ii) वातीय मृदा क्षरण

(iii) जलीय मृदा क्षरण

(iv) त्वरित मृदा क्षरण

ब. कारण (Causes)

मृदा क्षरण का मुख्य कारण अधिकतर वह क्षेत्र का अनुपयुक्त प्रबंध तथा अविवकपूर्ण कृषि पद्धतियाँ है। भूमि का गलत उपयोग जैसे एक फसल बार–बार बोने से उत्पादकता कम हो जाती है। मृदा की उर्वरता में कमी से वनस्पति आवरण कम होता है जिससे क्षरण में वृद्धि होती है। म0 प्र0 में मृदा अपरदन का मुख्य कारण पहाड़ी ढलानों में की जाने वाली खेती है। सामान्यता भूक्षरण अनेक कारकों पर निर्भर करता है। जैसे कि मृदा का प्रकार, संरचना तथा गठन, ढाल की मात्रा तथा लम्बाई, वर्षा की तीव्रता अवधि तथा वितरण और वनस्पति आवरण का प्रकार (घास) वृक्ष, फसल इत्यादि। म0प्र0 में मुख्यतः भूक्षरण जल बहाव के कारण होता है।

स. हानियाँ (Losses)

(i) कृषि भूमि या उपजाऊ भूमि का अनुपजाऊ भूमि में बदल जाना।

(ii) बड़े व उपयोगी भूभागों का छोटे–छोटे भागों में बिखण्डन फलतः उनका अनुपयोगी हो जाना

(iii) जल संचयन में कमी

(iv) बीहड़ों का निर्माण

द. नियंत्रण (Control)

1. घास का आवरण तैयार कर एवं बृक्षारोपण द्वारा।
2. भूमि का बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग करके।
3. पट्टीदार खेती करके।
4. फसल चक्रीकरण द्वारा।

5. खेतों में रक्षक मेखला का निर्माण करके।

6. वेदिकाओं का निर्माण करके तथा उचित जल निकास प्रणाली विकसित करके।

20.5.3.5 बीहड निर्माण (Creation of ravine)

बीहड निर्माण भूमि प्रदूषण कर मुख्य कारण बन चुका है। यह मानवीय हस्तक्षेप है। बीहड क्षेत्रो के विकास में मानवीय हस्तक्षेप जैसे कृषि आवास एंव भूखनन में सर्वाधिक योगदान दिया है। म0प्र0 में लगभग 683 लाख हेक्टेयर भूमि बीहड बन चुके है। जिसका 21.1% बुन्देलखण्ड में है एक अनुमान के अनुसार बुन्देलखण्ड की 143 लाख हेक्टेयर भूमि बीहड में आ चुकी है। यहाँ भूमि के कटाव की वार्षिक दर 0.12% है। आगामी वर्षों में यहाँ के अधिकतर खेत उजड़ कर बीहड़ में परिवर्तित हो जायेंगे। इस क्षेत्र के गहरे बीहड छतरपुर और दतिया जिलों में पाये जाते हैं। केन और धसान नदियों के सीमा के बीच बसे छतरपुर में बीहड़ संकट गंभीर रुप ले चुका है।

चित्र 5.3: बीहड़ निर्माण

वर्तमान में दतिया, दमोह, पन्ना एंव टीकमगढ में लगभग क्रमशः 28, 25, 20 एवं 5 हजार हेक्टेयर भूमि बीहड़ में बदल चुकी है। इसी प्रकार सागर एवं छतरपुर में क्रमश; 21 हजार एवं 30 हजार हेक्टेयर भूमि बीहड़ हो गई है।

20.5.4 मध्यप्रदेश में पर्यावरण अनुकूल विकास की रणनीति

(Strategy for environment friendly development in M.P)

सरकार को ऐसी रणनीति की अवश्यकता है जो पर्यावरण के दीर्घकालिक लाभों को ऐसे अल्पकालिक लाभों के लिए बलिदान न करें ।मध्यप्रदेश में विकास की रणनीति बनाते समय पर्यावरण संरक्षण के लिए निम्न बिन्दुओं को मद्देनजर रखते हुए दीर्घकालिक विकास पर जोर देना चाहिए ।

(i) मध्यप्रदेश के अधिकांश निवासियों का जीवन तथा जीविका **वनोपज** पर निर्भर है। अनेक वनोपज जैसे भोजन, चारा, ईंधन, शहद, औषधि, इमारती लकड़ी, औद्योगिकी गोंद आदि यहाँ के वनवासियों के आय के स्त्रोत हैं, चूँकि मध्य प्रदेश सूखे की मार काफी समय से झेल रहा है। इसलिए पृष्ठलीय जल संरक्षण, बाढ़ और भूमि कटाव रोकने, मृदा उर्वरकता बढ़ाने हेतु वनों के संरक्षण को मध्य प्रदेश के विकास की रणनीति में शामिल करना होगा। हमें न केवल अपने मौजूद वनो को सुरक्षित रखने अपितु अपने वन आवरण को भी बढ़ाना होगा।

(ii) **जल सम्भरण** एवं जल का समुचित उपयोग जल प्रबन्धन कहलाता है। मध्यप्रदेश की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य पर निर्भर है। अतः मध्यप्रदेश के विकास के लिए कृषि का विकास आवश्यक है। मध्यप्रदेश की आर्थिक रीढ़ कृषि है। क्योंकि कृषि से यह 1/3 जी0 एस0 डी0 पी0 प्राप्त करता है। किन्तु दस वर्षों में 9 वर्ष सूखे से प्रभावित होने के कारण कृषक की स्थिति अच्छी नहीं है। ग्रामीणों की गरीबी तथा बेरोजगारी मुख्य समस्या है। किसानों की समस्या को दूर करने के लिए जल विभाजक प्रबन्धन (Watershed management) के द्वारा ग्रामो के विकास की ओर ले जाया जा सकता है। अनुमान है कि भारत में सन् 2025 तक जल को लेकर भारी दबाव पड़ेगा जिसके लिए वाटरशेड के द्वारा सिंचित क्षेत्र को बढाकर ग्रामीण क्षेत्र की समस्या का हल तथा मध्यप्रदेश को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाकर सतत विकास की ओर ले जाया जा सकता है। जैविक कृषि, पशुपालन, जल सम्मरण इत्यादि के माध्यम से भूजल को प्रदूषण रहित बनाकर एवं उसका स्तर बढाया जा सकता है।

(iii) खाद के रुप में **जैविक खाद** का उपयोग, विषैले पीड़कनाशकों के उपयोग के बजाय पीडक प्रबन्ध की समन्वित पीडक प्रबन्धन (Integrated pest management) प्रणालियाँ अपनाकर तथा पर्यावरण अनुकूल नीतियों को अपनाकर मध्यप्रदेश का दीर्घकालिक विकास किया जा सकता है। प्रायः वर्षा के पानी का संरक्षण किए बिना उसको बह जाने दिया जाता है और उसका विवेकपूर्ण उपयोग नही हो पाता। मृदा और जल का प्रबन्ध तथा वनारोपण जैसे दीर्घकालिक उपायों से सूखे के प्रभाव को न्यूनतम किया जा सकता है। बीज के लिए देशी बीज का ही उपयोग किया जाय क्योकि अनुवांशिक रूपान्तरित बीज में उत्पादन तो अधिक होता हैं किन्तु यह अस्थायी होता है। कृषि से बचे अवशेषों को खेतों में जलाने से रोका जाए क्योंकि इससे लाभदायक जीवाणु तथा ह्यूमस जो कि खेत की उर्वरता को बढाता है की हानि होती हैं। इससे निकलने वाली विषैली व हानिकारक गैसें जैसे– CO_2,CO इत्यादि वायु प्रदूषण के साथ – साथ ग्रीन हाउस प्रभाव व वैश्विक उष्णता को भी जन्म देती है।

(iv) **खनिज संसाधनों का समुचित उपयोग**– मध्य प्रदेश खनिज की दृष्टि से काफी सम्पन्न प्रदेश है। खनन कार्य को पर्यावरण ह्रास के प्रमुख कारक में गिना जाता है। खनन के कारण भूमि की उपलब्धता में कमी तथा औद्योगिक अपशिष्टो के कारण भूमि, वायु और जल का प्रदूषण ये सब इन अनवीकरणी संसाधनों के पर्यावरण संबंधी पार्श्व प्रभाव है। इस समस्या पर संपूर्ण विश्व को जागरुक होना चाहिए तथा प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन को रोकना चाहिए। एक तरफ जहाँ खनन के सकारात्मक प्रभाव हैं जैसे रोजगार मिलता है,

आधारभूत सुविधाओं में वृद्धि होती है तथा आर्थिक लाभ होता है वहीं दूसरी ओर जो भूखण्ड कभी उत्पादक वन और घास के मैदान थे। अब वे रेगिस्तान और बंजर भूमि में बदल रहे हैं। जलावन लकड़ी और झीगापालन के लिए सदाबहार बन (Mangrove) काटे गए हैं। खेती की जमीन बढ़ाने के लिए नमभूमि को सुखाया जाता है। आगे चलकर इन परिवर्तन के गंभीर आर्थिक परिणाम होने तय है। मनुष्य एक क्षेत्र की प्रजातियों को दूसरे क्षेत्र में लाता है तब भी आवासों की हानि होती है और मौजूद समुदायों का संतुलन बिगडता है। हमारे प्राकृतिक वन इमारती लकड़ी के लिए नष्ट किए जा रहे हैं। उद्योगपतियों के लिए जैव विविधता एक भारी भंडार है जिससे नए माल बनाए जा सकते हैं। कृषि वैज्ञानिकों के लिए जंगली पौधों की जैव विविधता बेहतर फसलों के विकास का आधार है। दवा उद्योग जैसे अनेक उद्योग अप्रभावित वनो में स्थित पौधों की वन्य प्रजातियों के भारी आर्थिक मूल्य की पहचान पर बहुत अधिक निर्भर है। इसे जैविक पूर्वेक्षण कहते हैं।

(v) सतत् विकास के लिए रणनीति

क. पहाडों को निवास स्थल या ऐसे अतिक्रमण से मुक्त रखने पर जोर दें क्योंकि पहाडी ढालों का ह्रास पर्यावरण की भयानक समस्याओं को जन्म देता है।

ख. अपने बाग या खेत में रसायनों का प्रयोग न करें इससे कीटभक्षी प्राणियों खासकर पक्षियों और लाभदायक कीडों की रक्षा होगी। कृमि कम्पोस्ट का उपयोग करें और प्राकृतिक कीटनाशी का सहारा लें ।

ग. छतों पर गिरने वाले वर्षा के पानी को संचित करके इसका निर्वहनीय उपयोग करें, ताकि कुओं, नदियों और झीलों पर बोझ कम हो।

घ. घास का स्थानीय आवरण आवश्यक है अन्यथा मृदा अपरदन होता है। इसके लिए पशुओं की खुली चराई पर नियंत्रण किया जाना चाहिए।

ङ. समाज और प्रकृति की समग्रवादी समझ असंभव है। सतत विकास को आसानी से अपनाया जा सकता है। इसके लिए हमे पर्यावरण अनुकूल मानव गतिविधियाँ, प्राकृतिक और मानव निर्मित संसाधनों का संरक्षण, उत्पादन अवसरों का विकास, नवीकरणीय संसाधनों पर निर्भरता इत्यादि को अपनाना होगा।

च. सतत विकास हेतु प्रकृति संरक्षण और पुनर्सृजन हमारी सबसे बड़ी प्राथमिकता होनी चाहिए ।

छ. सूखा संभावित क्षेत्रों हेतु पर्यावरण वैज्ञानिक ऐसी फसलों का विकास करे जो न्यूनतम जल में भी उगकर अच्छा उत्पादन दे सकें साथ ही उचित फसल चक्र को अपनाने पर जोर दें।

ज. प्रयोगशलाओं में मिट्टी की नियमित जाँच हेतु किसानों को जागरुक किया जाए। उनको कृषि के परम्परागत तरीके अपनाने हेतु प्रोत्साहित किया जाए।

झ. वाणिज्यिक कृषि, वर्षा निर्भर कृषि, जैविक कृषि, रैचिंग कृषि इत्यादि को प्रयोग में लाया जाय।

हमने जाना

मध्यप्रदेश में अनेक प्राकृतिक संसाधन हैं। यदि इन्हें विवेकपूर्ण ढंग से विकास के कार्यों में लगाया जाये तो वांछित परिणाम बिना पर्यावरण को नुकसान पहुँचाये प्राप्त किये जा सकते हैं।

मध्यप्रदेश जैव विविधता की दृष्टि से एक समृद्ध राज्य है किन्तु बहुत–सी प्रजातियाँ धीरे–धीरे लुप्त हो रही हैं। इनके संरक्षण की दीर्घकालीन योजना बनाना और उस पर कड़ाई से अमल करना आज की प्रमुख आवश्यकता है।

संपूर्ण विश्व के साथ मध्यप्रदेश में भी सूखा, भूकम्प, बीहड़ निर्माण, मृदा–क्षरण जैसे अनेक पर्यावरणीय खतरे सम्मुख हैं। इनसे निपटने के लिये कारगर योजना और प्रभावी क्रियान्वयन के साथ–साथ आमजन की मानसिकता में परिवर्तन होना एक प्रमुख चुनौती है।

मध्यप्रदेश शासन ने पर्यावरण के अनुकूल विकास–नीति बनाकर लागू की है। जिसका उद्देश्य है कि दीर्घकाल में पर्यावरण को बिना क्षति पहुँचाये वांछित विकास–लक्ष्यों का लाभ आम जनो तक पहुँचाना सुनिश्चित किया जाये।

कठिन शब्दों के अर्थ

प्राकृतिक संसाधन – किसी क्षेत्र विशेष में प्रकृति द्वारा उपलब्ध कराये गये संसाधन प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं। प्राकृतिक संसाधनों में मुख्य रूप से खनिज सम्पदा, वन सम्पदा, वन्य जीव सम्पदा, पशुधन सम्पदा, जल संसाधन और कृषि जलवायु आते हैं।

पर्यावरणीय खतरे – ऐसे खतरे जो पर्यावरण के विनाश से उत्पन्न होते हैं। पर्यावरणीय खतरे कहलाते हैं। इनमें सूखा, भूकम्प, मरुस्थलीकरण, मृदाक्षरण, बीहड़ निर्माण इत्यादि प्रमुख हैं।

अभ्यास के प्रश्न

1. प्राकृतिक संसाधनों से क्या समझते हैं?
2. मध्यप्रदेश में प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धता पर एक आलेख लिखिए।
3. मध्यप्रदेश की जैव विविधता पर विस्तार से प्रकाश डालिये।
4. मध्य प्रदेश के संदर्भ में प्रमुख पर्यावरणीय खतरों को रेखांकित कीजिये। इनसे बचाव के क्या उपाय हो सकते हैं?
5. पर्यावरण के पुर्ननिर्माण में मिली सफलता से सम्बन्धित अनुकरणीय प्रसंगों को संकलित कर लिखिये।
6. मध्य प्रदेश में पर्यावरण के अनुकूल विकास की क्या रणनीति तय की गई है। इसके प्रमुख आयाम कौन–कौन से हैं?

आओ करके देखें

आपके आस–पास के क्षेत्र में कौन–कौन से पर्यावरणीय खतरे पनप रहे हैं। सर्वेक्षण से अनुमान लगाकर उन पर एक आलेख लिखिये।

इन खतरों से बचाव की एक कार्य–योजना तैयार कीजिये। उसके विभिन्न आयामों को लिखिये और परामर्शदाताओं की उपस्थिति में सम्पर्क कक्षाओं में चर्चा कीजिये।

अधिक जानकारी के लिए संदर्भ सूत्र

संसाधन और पर्यावरण, बी.पी.राव, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर (उ.प्र.)

जलग्रहण एवं पर्यावरण संरक्षण, एस.सी. कलवार, अविष्कार प्रकाशन, जयपुर (राज.)

■■■